विश्व अमर ग्रन्थमाला

बर्ट्रेंड रसल

युग द्रष्टा

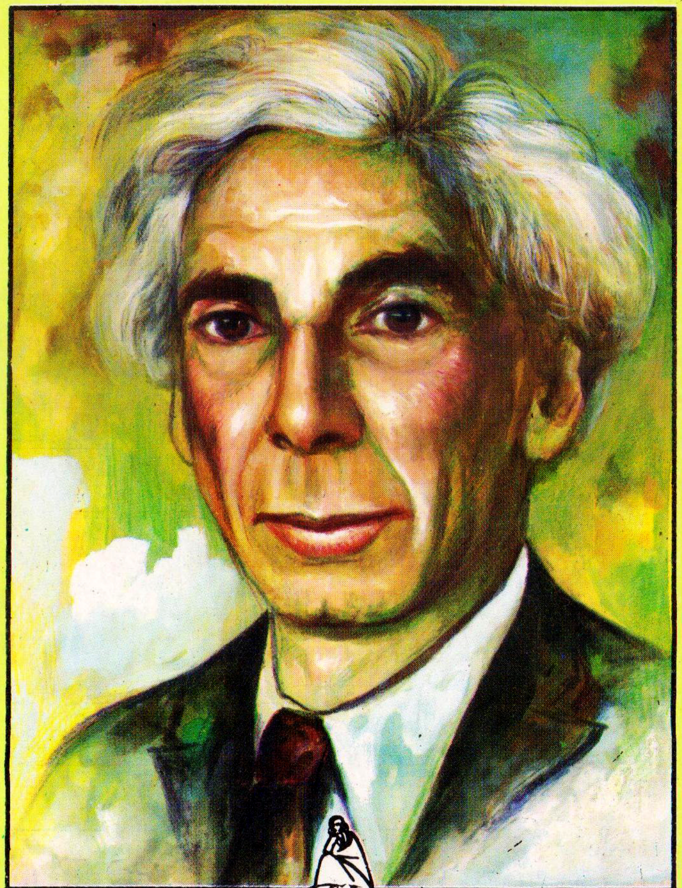

विश्व चिन्तन

बर्ट्रेंड रसल : युगद्रष्टा

"इस संसार में सुखी रहने के लिए···यह
अनुभव करना आवश्यक हो जाता है
कि हम निपट अकेले व्यक्ति नहीं,
जिसके दिन शीघ्र समाप्त हो जाएंगे,
वरन् एक ऐसी जीवन-सरिता का
अंग हैं, जो प्रथम बिंदु से
चलकर एक अज्ञात व दूरवर्ती
भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।"

ये विचार थे बीसवीं सदी के सर्वाधिक विख्यात दार्शनिक बर्ट्रेंड रसल (Bertrand Russell) के।

रसल ने इस सदी की लगभग सभी समस्याओं, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा वैज्ञानिक दर्शन पर गहरा चिंतन किया। वह मानते थे कि प्रेम, सौन्दर्य, जीवन की आनन्ददायी प्रवृत्तियां मानव-जाति की रक्षा के स्वाभाविक तरीके हैं, अपने कर्म को वह चिंतन के अनुरूप बनाना चाहते थे। उनके चिंतन में व्यापकता और गहराई है और आज के पाठक के लिए सरल भाषा में लिखा यह ग्रन्थ उन्नति व सफलता का रास्ता भी है।

□

विश्व चिंतन सीरीज़

प्लेटो—संवाद	: प्रस्तुति—बद्रीनाथ कौल	14/-
नीत्शे-ज़रथुष्ट्र ने कहा	: प्रस्तुति—मुद्राराक्षस	14/-
मैकियावेली—शासक	: प्रस्तुति—शशि बंधुभ	14/-
शेख सादी—गुलिस्तां	: प्रस्तुति—रामकिशोर सक्सेना	14/-
सार्त्र—शब्दों का मसीहा	: लेखन—डा० प्रभा खेतान	14/-
कन्फ्यूशियस—महान् गुरु	: लेखन—डा० विनय	14/-
खलील जिब्रान—पैग़म्बर	: प्रस्तुति—डॉ० नीलिमा सिंह	14/-

सम्पादक : डा० नीलिमा सिंह

□

बर्ट्रेंड रसल

(BERTRAND RUSSELL)

(1872-1970)

नोबेल प्राइज़

सन् 1950 ई०

□

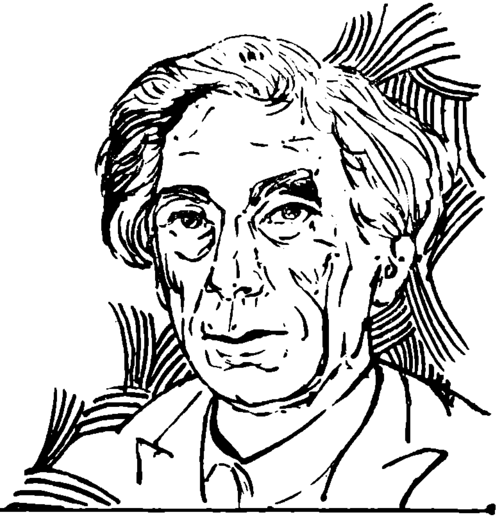

बर्ट्रेंड रसल

युग द्रष्टा

प्रस्तुति : दुर्गा पन्त

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

बर्ट्रेंड रसल : युगद्रष्टा

(जीवन और चिंतन)

सम्पादन

डॉ० नीलिमा सिंह

© प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : १९८९

प्रकाशक

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
दिलशाद गार्डन, शाहदरा,
दिल्ली-११००९५

मुद्रक

चोपड़ा प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

BERTRAND RUSSELL : YUGDRASHTA
(Life and thought of Philosopher)
SMT. DURGA PANT

अनुक्रम

अपने युग के महान् चिंतनशील प्रवक्ता

रमल : एक परिचय : ६

बर्ट्रेंड रसल : युगद्रष्टा

जीवन, शिक्षा और मानसिक विकास : १६

प्रेम, विवाह, सामाजिक संस्थाएं तथा नीति : ५१

सुख और सुख के साधन : ७६

राजनीति तथा नीतिशास्त्र : ६८

धर्म और ईश्वर : १०५

गणितशास्त्र तथा तर्कशास्त्र : १११

रसल का भाषा-दर्शन : १२१

विज्ञान-दर्शन : १३०

उपसंहार : १४०

□

अपने युग के महान्
चिंतनशील प्रवक्ता

बर्ट्रेंड रसल

एक परिचय

रसल बीसवीं सदी के लगभग दो तिहाई भाग के भागीदार रहे। इस सदी की लगभग सभी समस्याओं—नैतिक, सामाजिक राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा वैज्ञानिक-दर्शन पर गहन चिन्तन करने तथा इस सदी की उपलब्धियों व दो महायुद्धों के प्रकोपों के प्रति जागरूक रहने को वे मजबूर थे। सबसे बड़ी समस्या जो बीसवीं सदी में मनुष्य जाति के सम्मुख उपस्थित हुई है, वह है परमाणु युद्ध का भय। इस भय से मुक्ति की प्रत्येक सम्भव विधि पर विचार करने, वक्तव्य देने, लिखने तथा कार्य करने का बीड़ा जो उन्होंने एक बार उठाया तो मरते दम तक इस काम को करते रहे।

आज उनकी मृत्यु के १९ वर्ष बाद हम बीसवीं सदी का वास्तविक रूप और भी स्पष्टता से देख पा रहे हैं। अमेरिका, रूस तथा अनेक विकसित अथवा विकासशील देशों के चेहरों पर से शान्तिप्रियता के नकाब उठ गये हैं। लोग यह तर्क देते हैं कि शक्ति का सन्तुलन स्थापित करने के लिए युद्ध का भय दोनों तरफ होना चाहिए इसलिए दोनों के पास परमाणु बम का होना आवश्यक है। अतः प्रत्येक राष्ट्र अपने शत्रु राष्ट्र के विषय में जानना चाहता है कि उसके पास परमाणु बम तो नहीं है, यदि है, तो वह खुद भी उसके निर्माण में लग जाए।

इन सब सम्भावनाओं का पूर्वाभास रसल को हो गया था। इसीलिए उनके चिन्तन का महत्त्व आज और भी बढ़ गया है। दो महायुद्धों के कारण मानव जाति की बौद्धिक, नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से उतनी ही अधिक क्षति हुई है जितनी कि भौतिक दृष्टि से। इस क्षति की पूर्ति

तथा भविष्य में ऐसे युद्ध की सम्भावना को घटाने के प्रत्येक साधन की खोज करना उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। इस खोज का दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक पहलू उनकी दृष्टि में उतना ही महत्त्व रखता था, जितना राजनैतिक व सामाजिक।

रसल मानते थे कि प्रेम, सौन्दर्य, जीवन की आनन्ददायी प्रवृत्तियां मानव जाति की रक्षा के स्वाभाविक तरीके हैं। भय, ईर्ष्या, घृणा व अविश्वास ध्वंस का कारण बन जाते हैं। संसार को मनुष्य के आदर्शों के अनुरूप बदलने की लगातार कोशिश, सफलता न मिलने पर भी निराशा-वादी भावनाओं को बढ़ावा न देना, गहन उदासी के क्षणों में भी सुखद स्मृतियों का सहारा लेकर व्यक्तिगत परेशानियों से ऊपर उठना, यह सब रसल के जीवन की नित्यप्रति की उपलब्धियां थीं। अपने कर्म तथा जीवन को अपने चिन्तन के अनुरूप बनाने की जिद के कारण कई बार उन्हें सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में तरह-तरह के कष्टों तथा विरोधों का सामना करना पड़ा।

बौद्धिक दृष्टि से रसल बीसवीं सदी के सर्वाधिक विख्यात दार्शनिक-विचारक कहे जा सकते हैं। उनकी दार्शनिक रचनाओं में उनके गहन चिन्तन का ही नहीं, उनकी साहित्यिक क्षमता का भी परिचय मिलता है। सन् १९५० में रसल को उनकी पुस्तक 'मैरेज एण्ड मोरल्स' के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उनके दृष्टिकोण की व्यापकता तथा ज्ञान की ओर सतत बढ़ती जिज्ञासा ने उन्हें जीवनपर्यन्त सत्यनिष्ठ बने रहने की प्रेरणा दी। साथ ही, उन सभी सामाजिक व राजनैतिक बुराइयों का, जो मनुष्य जाति के लिए घातक बन चुकी हैं, वे उन्मूलन करने का ही आजीवन प्रयत्न करते रहे। अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्हें मानव जाति के कल्याण की बेहद चिन्ता हो आई थी। उनका हृदय मानव के लिए सदा व्यथित रहता था।

अपनी आत्मकथा के तीसरे व अन्तिम भाग में रसल ने परमाणु युद्ध की सम्भावना के विरुद्ध किए गए अपने सक्रिय प्रयत्नों का सविस्तार ब्यौरा दिया है। सन् १९५७ में पगवाश में रसल के प्रयत्नों के फलस्वरूप संसार के वैज्ञानिकों की कान्फरेन्स हुई। इसका नाम 'पगवाश कान्फरेन्स आफ

साइंटिस्ट्स' रखा गया। सन् १९५८ में फरवरी के महीने में सी० एन० डी० अर्थात् 'कैम्पेन फार न्यूक्लिअर डिसामर्मिण्ट' की घोषणा की गई। इस मीटिंग में लोग बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। सन् १९६३ में 'बर्ट्रंड रसल पीस फाउण्डेशन' की स्थापना 'एटलाण्टिक पीस फाउण्डेशन' के साथ-साथ की गई। पहली संस्था का काम था तात्कालिक विवादास्पद विषयों पर विचार करना जिससे लड़ाई की नौबत न आए। दूसरी संस्था का उद्देश्य ज्यादा व्यापक था। लम्बे समय तक गहन चिन्तन के पश्चात् मनुष्य जाति के भविष्य, प्रेम, न्याय, प्राकृतिक सौन्दर्य, मित्रता, पारिवारिक सुख आदि अनेक ऐसे विषयों पर उन्होंने लिखा और वक्तव्य दिए जिनका सम्बन्ध धर्म, राजनीति तथा दर्शन से ही नहीं; मनुष्य जीवन के अन्य पहलुओं से भी है।

अपने युग की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विचारधारा को ही नहीं, वरन् प्रत्येक समस्या को जानने-समझने को वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। यह कर्त्तव्य वे अपने प्रति अनुभव करते थे, किसी अन्य के प्रति नहीं। उनका चिन्तन उनके युग की बौद्धिकता तथा नैतिकता को प्रतिबिम्बित करे इसके लिए वे सदा उत्सुक रहते थे।

रसल एक यथार्थवादी व्यक्ति थे—उन्हें मिथ्या आदर्शों या किसी प्रकार के भ्रम से जरा भी लगाव नहीं था। परन्तु साथ ही उनमें यह गुण भी था कि संसार की भयंकर परिस्थितियों को जानते हुए भी वे 'सिनिकल' कभी नहीं बने। अपने व्यक्तित्व के मानसिक व शारीरिक दोनों पक्षों को उन्होंने एक सक्रिय जीवन-क्रम में इस प्रकार जुटा रखा कि अपने लगभग ९८ वर्ष के जीवन में उन्हें शायद ही कभी ऊब का अनुभव हुआ हो। ज्ञान तथा जीवन के 'सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं' में उनकी रुचि थी। गणित, दर्शन तथा साहित्य के विषयों में उन्हें जितनी रुचि थी, उतनी ही अपने प्रियजनों व मित्रों से पत्र-व्यवहार करने अथवा देश-विदेश का भ्रमण करने, विभिन्न जाति व देश के लोगों से मिलने आदि में थी। वे अंग्रेज सरकार के साम्राज्यवादी विचारों के विरोधी थे और यह मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता का बराबर का हकदार है।

चिन्तन के जगत् में भी रसल अपने युग के प्रवक्ता थे। अपने युग की

प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विचारधारा तथा विचार-पद्धति, विज्ञान, दर्शन अथवा राजनीति, जिस क्षेत्र में भी हो, सबकी रसल ने आलोचनात्मक व्याख्या की और इस कार्य को अपने बौद्धिक जीवन का कर्त्तव्य समझा। बौद्धिक ईमानदारी को उन्होंने नैतिक ईमानदारी से किसी भी तरह कम नहीं समझा। समय-समय पर अपने विचारों को नया मोड़ देते हुए उन्हें किसी तरह की परेशानी का अनुभव नहीं हुआ। वे अपने विचारों को नई परिस्थितियों, नये व्यक्तियों, नये अनुभवों, नई वैज्ञानिक खोजों, नये दार्शनिक चिन्तन व युग की समस्याओं तथा उपलब्धियों के अनुकूल तराशते, काटते-छांटते रहे।

अपने प्रबुद्ध विद्यार्थियों से भी उन्होंने उतना ही सीखा, जितना उन्हें सिखाया। केम्ब्रिज के खुले व रूढ़िमुक्त वातावरण में उनकी नैसर्गिक स्वतंत्रताप्रिय बौद्धिक प्रवृत्तियों का समुचित विकास हो सका था। वहां पर उन्होंने बौद्धिक ईमानदारी का मूल्य पहचाना। अपने विचारों की आलोचना से न कतराना और साथ ही यह भी कि चाहे संसार के लोग आपको पागल ही क्यों न करार दें, अपने सच्चे मन को व्यक्त करने से न झिझकना; यह बातें उन्होंने केम्ब्रिज के लोगों में पाईं और स्वयं अपने जीवन में उन्होंने इनको स्वाभाविक ढंग से माना।

रसल में गुण-ग्राहकता विकसित रूप में पाई जाती है। संसार के अनेक महान् लेखकों, वैज्ञानिकों, राजनैतिक नेताओं और साथ ही अनेक साधारण व्यक्तियों से भी उनकी अच्छी मित्रता थी। उनके मित्रों में राजनीतिज्ञों की भी काफी बड़ी संख्या थी। रसल नारी-पुरुष सम्बन्धों में मित्रता, सद्भावना व सहज समानता को महत्त्व देते थे। नारी-मुक्ति-आन्दोलन में उनकी पूर्ण आस्था थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार कई संदर्भों में व्यक्त किए और बीसवीं सदी के इस महान् अभियान को आगे बढ़ाने में अनेक प्रकार की सहायता दी। उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई थी कि उनके माता-पिता भी नारी-मुक्ति के लिए कार्यरत रहे थे तथा अपने समय के क्रान्तिकारी लोगों में से माने जाते थे।

किसी भी महान् समाज-सुधारक अथवा चिन्तनशील व्यक्ति में अपने

युग की नब्ज पहचानने की शक्ति होती है। रसल का सम्पूर्ण चिन्तन व अध्ययन युग की प्रमुख समस्याओं को लेकर ही हुआ। विज्ञान व तकनीकी विकास के प्रति उनकी उत्साहपूर्ण रुचि, इनकी प्रत्येक देन को विस्मय व आनन्द की भावना से ग्रहण करने की क्षमता उनमें जितनी प्रखर थी, उतनी ही तीव्र थी वैज्ञानिक खोजों के दुरुपयोग के भयंकर परिणामों के प्रति उनकी संवेदनशीलता। परमाणु युद्ध की सम्भावना को किस प्रकार हटाया जाए, इस विषय पर वे निरन्तर चिन्तन करते रहे। इसको लेकर उन्होंने संसार के बड़े वैज्ञानिकों जैसे आइन्स्टाइन तथा नेताओं जैसे ख्रुश्चेव तथा आइजन हावर आदि को पत्र लिखे। उनके प्रयत्नों का परिणाम क्या होगा, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं थी; पर उन्हें आशा थी कि संसार के ज्ञानी लोग मिलकर विचार करें तो इस समस्या को सुलझा सकते हैं। अपने आशावादी हो जाने की व्याख्या करते हुए वे अपनी आत्मकथा के तृतीय भाग में लिखते हैं :

"१९५० के आरम्भ में ओ० एम० तथा अन्त में नोबेल पुरस्कार से मेरी सम्माननीयता की शुरुआत हुई। यह सच है कि मैं कुछ असहज-सा महसूस करने लगा, इस डर से कि कहीं यह एक अन्धी परम्परा की ही शुरुआत न हो। मैंने सदा यह माना है कि जो दुष्ट नहीं है, वह सम्माननीय नहीं हो सकता, परन्तु मेरी नैतिक संवेदनाएं इतनी मन्द हो चुकी थीं कि मैं समझ नहीं सका कि मैंने पाप किया है। इन सम्मानों तथा मेरी पुस्तक 'पाश्चात्य दर्शन का इतिहास' के कारण बढ़ी हुई आमदनी से उत्पन्न स्वतंत्रता तथा आश्वासन की भावना के फलस्वरूप मैं अपनी शक्तियों को अपनी इच्छा के अनुकूल कार्यों में लगा सका और काफी काम कर पाया। इसके परिणामस्वरूप मैंने आशा तथा स्फूर्ति का अनुभव किया। मैंने सोचा, शायद अभी तक मैंने मनुष्य जाति के भविष्य के सम्बन्ध में निराशाजनक सम्भावनाओं पर ही ज्यादा जोर दिया है; अब वक्त आ गया है कि मैं ऐसी पुस्तक लिखूं जिनमें समकालीन विवाद के विषयों के सुखद पहलुओं को व्यक्त किया जाए। मैंने इस पुस्तक का नाम रखा 'बदलते हुए संसार के लिए नई आशा' और जहां दो सम्भावनाएं थीं, मैंने जानबूझकर यह दिखाया कि हो सकता है जो ज्यादा सुखद सम्भावना है,

वही सच निकले।"

लम्बे इतिहास के बाद मनुष्य नये युग में पहुंचा है। यहां पहुंचने के पूर्व उसे तरह-तरह के अनुभव हुए, अनेक प्रकार के भयों पर विजय पाकर वह पहुंचा है एक खुले मैदान में, जो मुस्कराता जान पड़ता है। पर हम लड़ाई-झगड़ों के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि हमें उषा के प्रकाश पर भी विश्वास नहीं होता। "मनुष्य को अपनी मुक्ति के लिए विशेषकर एक वस्तु की जरूरत है—अपने हृदय में आनन्द का प्रवेश होने दे और भय को भूले हुए अतीत के अंधेरे में लुप्त हो जाने दे। उसे अपनी आंखें उठाकर कहना चाहिए, 'नहीं, मैं एक लाचार पापी नहीं हूं। मैं एक ऐसा प्राणी हूं जिसने कठिन राहों पर चलकर यह जाना है कि प्राकृतिक कठिनाइयों पर बुद्धि से विजय कैसे पाई जाती है, स्वतंत्रता तथा आनन्द से अपने तथा फलतः मनुष्य जाति के साथ शान्तिपूर्वक कैसे जिया जा सकता है।' यह तभी हो सकेगा जब लोग दुःख के बजाय आनन्द को चुनें; अन्यथा शाश्वत मरण मनुष्य को स्वयं उसके द्वारा अर्जित स्मृति के गर्त में डाल देगा।"

इसी संदर्भ में एक और स्थान पर उन्होंने लिखा, "मनुष्य जाति ऐसी अवस्था में पहुंच गई है, जैसे एक मनुष्य एक कठिन व खतरनाक ऊंचाई पर चढ़ रहा है जिसके अन्तिम छोर पर प्यारी वादियों से भरा एक हिस्सा है। प्रत्येक कदम के साथ उसका गिरना (यदि वह गिरा तो) अधिक भयंकर होता जाता है, हर पग पर उसकी थकान बढ़ती जाती है और चढ़ाई और कठिन होती जाती है। अन्त में एक ही पग रह जाता है (और चलने वाले को यह पता नहीं) क्योंकि वह अपने सिर के ऊपर निकली हुई चट्टान से परे कुछ भी नहीं देख पाता। उसकी थकान इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि वह विश्राम के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता—यदि वह हिम्मत हार जाए तो उसे मृत्यु में विश्राम मिलेगा। आशा कहती है, 'एक प्रयत्न और—शायद यह अन्तिम प्रयत्न ही हो।' व्यंग्य कहता है, 'मूर्ख, क्या तू अभी तक आशा की ही बात नहीं सुनता आया है? देख उसने तुझे कहां पर ला पटका है।' आशावाद कहता है, 'जब तक जीवन है, तब तक आशा रहती है।' निराशावाद गुर्राता है, 'जब तक

जीवन है, तब तक पीड़ा।' क्या थका हुआ पर्वतारोही एक और कदम उठाता है या अपने को गर्त में गिर जाने देता है ? हममें से जो जीवित रहेंगे, उन्हें कुछ ही वर्षों में इसका उत्तर मिल जाएगा।"

एक ओर बड़ी-बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से जूझना और दूसरी ओर सामान्य मनुष्य की तरह, अपने घर व परिवार में गहरी रुचि रखना, अपने बच्चों और (जब वे बड़े हो गए तो) नाती-पोतों के साथ खेलना और उनके साथ समय बिताना यह सब उनके लिए स्वाभाविक स्थितियां थीं। पारिवारिक सुख-शान्ति का महत्त्व तीन तलाकों और चार विवाहों से गुजरने पर उन्हें अच्छी तरह समझ में आ गया था। अपने पुत्र, पुत्री, बहू, दामाद तथा नाती-पोतों के जीवन व भविष्य को भी उन्होंने संसार की वृहत् समस्याओं के संदर्भ में देखा। अपने बड़े बेटे में उन्होंने जीवन के प्रति गहरी व्यथापूर्ण अनास्था पाई और उसकी ही नहीं, उसकी पत्नी की पीड़ा को भी समझा। उनके टूटते हुए रिश्तों को देखकर वे मन-ही-मन पीड़ित होते थे। परन्तु उतनी न सही, काफी चिन्ता उन्हें मनुष्य जाति के लिए थी। अपने परिवार के जीवन को वे विश्व के संदर्भ में जीते थे। चिन्तन के विषयों व भावनाओं की भूमिका का अक्सर मिलन हो जाता था।

धर्म के संदर्भ में रसल को नास्तिक ही कहना होगा। वे धर्म, और विशेषकर ईसाई धर्म, के कट्टर आलोचक थे। धर्म में रूढ़िवाद तथा अन्ध-विश्वास ही नहीं, अनेक प्रकार की अन्य बुराइयां भी हो सकती हैं। ईसाई धर्म की कट्टरता, जिसे पापी माना जाता है, उसके प्रति अमानवीय कठोरता, जीवन के सहज सुखों व आनन्द से मुख मोड़ने की शिक्षा, रसल को बेहद नापसन्द थी।

विज्ञान, दर्शन व गणित में रुचि व आस्था का यह परिणाम हुआ कि रसल ने 'मैं ईसाई क्यों नहीं हूं' पुस्तक में ईसाई धर्म की खुलकर आलोचना की और तर्क द्वारा साबित करने का प्रयत्न किया कि ईश्वर की सत्ता को स्थापित करने के पक्ष में दिए गए सारे विवाद निराधार हैं तथा चर्च द्वारा दी गई शिक्षा कट्टरतापूर्ण व रूढ़िग्रस्त है। स्वयं रसल बौद्धिक संशयवाद के समर्थक रहे। अंग्रेजी सभ्यता में ढले उनके बौद्धिक

संस्कारों पर ब्रितानी अनुभववादियों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। उनमें से भी डेविड ह्यूम की विचारधारा से वे विशेष रूप से प्रभावित हुए।

दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में प्रत्येक प्रतिनिधि विचारधारा से रसल का परिचय हुआ और लगभग सभी से वे कभी-न-कभी प्रभावित भी हुए। जिस विचारधारा से वे असहमत होते, उसकी आलोचना उनके द्वारा अवश्य होती। यह उनकी बौद्धिक ईमानदारी का एक अनिवार्य पहलू था। विश्लेषणात्मक चिन्तन पद्धति (जो बीसवीं सदी में अपने चरम स्वरूप तक पहुंच गई है) के विकास में रसल तथा उनके मित्र सी० ई० मूर और विद्यार्थी विटगिन्स्टाइन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आधुनिक गणितशास्त्र तथा तर्कशास्त्र के क्षेत्र में रसल की देन अद्वितीय कही जा सकती है। गणित व तर्कशास्त्र में वर्ग-व्यवस्था के सूक्ष्म प्रश्नों को लेकर एक नए शास्त्र का जन्म हुआ जो 'सेट थ्योरी' के नाम से जाना जाता है। आधुनिक गणितशास्त्र की अध्ययन विधि तथा शिक्षा विधि 'सेट थ्योरी' के ऊपर आधारित है। आधुनिक युग में इसका विकास रसल के वर्ग-सम्बन्धी सिद्धान्त पर आधारित है। अपने गुरु तथा मित्र प्रोफेसर ह्वाइट-हेड के साथ मिलकर लिखी पुस्तक 'प्रिन्सिपिया मेथमेटिका' में रसल ने कुछ मूलभूत गणितीय प्रश्नों को तर्कशास्त्र के मूल सिद्धान्तों से जोड़ा और विचार के मूल सिद्धान्तों में ही गणितशास्त्र का आधार है, इस मत की स्थापना की।

विस्तार व गहनता दोनों दृष्टियों से रसल का चिंतन युग का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से उन्हें बीसवीं सदी का युगद्रष्टा कहना अनुचित न होगा।

बर्ट्रेंड रसल : युगद्रष्टा

जीवन, शिक्षा और मानसिक विकास

रसल का जन्म १८ मई, १८७२ में एक सुविख्यात अंग्रेज परिवार में हुआ। उनके दादा जार्ज जान रसल दो बार ब्रिटेन के प्रधानमंत्री रहे। उनके पिता विस्काउण्ट एम्बरले तथा मां द्वितीय लार्ड स्टैन्ली एम्बरले की पुत्री अपने प्रगतिशील विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। रसल तीन वर्ष के भी नहीं हो पाये थे कि माता-पिता दोनों का ही साया उनके ऊपर से उठ गया। माता-पिता के देहान्त के बाद वे तथा उनके बड़े भाई फ्रैंक अपने दादा-दादी के पास रिचमण्ड पार्क में स्थित पिम्ब्रौक लाज में रहने लगे। रसल की दादी मिन्स्रे के अर्ल की पुत्री थी।

अपनी मां की डायरी से रसल ने जाना कि वे अत्यन्त गम्भीर, मौलिक, साहसी, ओजस्विनी तथा जिदादिल महिला थीं। साथ ही वे देखने में सुन्दर भी थीं। रसल के पिता मेहनती, असांसारिक, उदास तथा दार्शनिक व्यक्ति थे। दोनों अपने सुधारवादी सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने में आजीवन सक्रिय रहे। रसल के पिता की जान स्टुअर्ट मिल से अच्छी मित्रता थी। उनके प्रभाव में आकर वे तथा रसल की मां दोनों बर्थ कंट्रोल में विश्वास करने लगे थे। नारी-स्वतंत्रता तथा स्त्रियों को मतदान का अधिकार दिलाने से सम्बन्धित कार्यों में भी उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया। अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण रसल के पिता को संसद् से अपनी सदस्यता खोनी पड़ी थी। मां को भी अपने विचारों के कारण तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। रसल के पिता की पुस्तक 'ऐन एनैलेसिस आफ रिलिजन' उनके मरने के बाद छपी जिसमें उनके स्वतंत्र विचारों का परिचय मिलता है।

रसल तथा उनके भाई फ्रैंक के लिए पिता द्वारा जो दो शिक्षक रखे

गये थे—वे दोनों ही नास्तिक थे। नवजात रसल के विषय में उनकी मां ने अपनी मां (रसल की नानी) को लिखा था कि "बेबी का वजन पौने नौ पाउण्ड है तथा लम्बाई २१ इंच, मोटा और बदसूरत-सा, बहुत कुछ फ्रैंक की तरह (ज्यादातर लोग ऐसा कहते हैं), नीली आंखें दूर-दूर और ठुड्डी नहीं के बराबर। वक्त पर दूध न मिले या गैस हो जाए या कुछ और तो ऐसा भयंकर गुस्सा आता है कि चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सर पर उठा लेता और बार-बार कांप-कांप उठता है, जब तक कि उसे शान्त न कर दिया जाए···अत्यन्त शक्तपूर्ण तरीके से सिर उठाकर चारों तरफ देखता है···" यही वह छोटा बच्चा था जो एक दिन विश्वविख्यात दार्शनिक, साहित्यकार तथा तर्क व गणित के क्षेत्र में एक अद्वितीय प्रतिभाशाली लेखक बना।

पिम्ब्रौक लाज में बीते हुए अपने बचपन की याद करते हुए रसल लिखते हैं कि वहां का बाग पुराने समय का प्रतीक बन गया था जहां कभी बड़े-बड़े विदेशी दूत टहला करते थे तथा राजकुमार फूलों की कलियों को देखकर प्रसन्न होते थे। रसल यहां एक स्वाप्निल पूर्णता में खोए रहते थे और उनके साथ रहती थी आकृतियां—उनके दिवंगत माता-पिता व बहन की। यहीं पर रसल ने जाना कि उनके दादा जी नेपोलियन से मिलने एल्बा गए थे तथा दादी के दादा का गला इसलिए काट दिया गया था कि उन्होंने कहा था कि संसार की रचना ईसा पूर्व ४००४ में हुई होगी।

रसल अपने पूर्वजों तथा अपने माता-पिता के विषय में अक्सर सोचा करते थे कि वे कैसे लोग रहे होंगे। बचपन में वे चिड़ियों के अण्डे जमा करते थे और समय की उड़ान के बारे में विचार करते रहते थे। उनके दादा जी का देहान्त उस समय हुआ जब रसल केवल ६ वर्ष के थे। इस प्रकार दादा जी का भी उनके जीवन में विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका। दादी व भाई फ्रैंक ये दो निकटतम सम्बन्धी रह गये।

दादी से उनका गहरा सम्बन्ध रहा और उनके व्यक्तित्व तथा विचारों का रसल के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी दादी स्काटिश प्रैस्बिटेरियन मत को मानती थीं। राजनीति के क्षेत्र में वे उदारतावादी थीं और मूलतः

एक धार्मिक महिला थी। रसल के प्रति उनको अत्यधिक स्नेह था। रसल अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं कि दादी के लिए संसार में दो ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं—अच्छे और बुरे। अच्छे लोग प्रत्येक कार्य को भलाई के उद्देश्य से करते हैं; और बुरे लोग कभी इतने बुरे नहीं होते। देश-प्रेम, सार्वजनिक सेवा, बच्चों से प्रेम अच्छी भावनाएं हैं तथा धन या प्रभुत्व का लोभ, घमण्ड बुरी भावनाएं। वे शराब तथा तम्बाकू आदि से घृणा करती थीं और उन्हें सदा यह इच्छा रही कि वे शाकाहारी बन जायें। उन्होंने अत्यन्त संयम का जीवन व्यतीत किया।

रसल जब बड़े होने लगे तो धीरे-धीरे उनकी दादी का नैतिकता से बोझिल शुचिवाद दमघोंटू-सा लगने लगा। दादी जैसी भी थीं, रसल का उनसे भावनात्मक सम्बन्ध इतना पक्का था कि विचारों के क्षेत्र में एकमत न होते हुए भी उनसे प्रेम बना रहा। बचपन में रसल को कई बार यह भय होता था कि यदि दादी मर गईं तो क्या होगा। ईश्वर की दया से दादी तब मरीं, जब रसल का विवाह भी हो चुका था और रसल उनके उतने निकट नहीं रह गये थे। फिर भी वे आजीवन उन्हें याद करते रहे। उनकी निर्भीकता, जनसेवा की भावना, लोगों की राय के प्रति उदासीनता आदि गुणों से रसल सदा प्रभावित रहे। दादी ने रसल को एक बाइबिल दी थी जिसके ऊपर के पृष्ठ पर यह पंक्ति लिखी थी "तुम बुरा काम करने वाले बहुजनों का अनुसरण नहीं करोगे।" इस कथन से रसल को जीवन-पर्यन्त शक्ति मिली। उनके जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये जब बहुमत उनके विपक्ष में था, किन्तु इस बात से वे कभी घबराये नहीं।

बच्चों के मन में उठने वाली भावनाओं के सम्बन्ध में बड़ों की लापर-वाही रसल को बचपन से ही खलती रही। बड़े लोग कई बार बच्चों से कोई वादा करके भूल जाते हैं। बच्चा उस वादे की पूर्ति का उत्सुकता से इन्तजार करता है। रसल का विश्वास था कि माता-पिता व शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का समुचित ज्ञान होना चाहिए।

बचपन में रसल एकान्तवासी थे। उनके भाई फ्रैंक उनसे सात वर्ष बड़े और काफी उद्दण्ड स्वभाव के थे। परिवार के लोग रसल को उनसे दूर ही रखना पसन्द करते थे। रसल को यह बात बुरी लगती थी, पर जब

भी फ्रेंक साथ रहते, उन पर हावी हो जाते और अन्त में रसल को उनके चले जाने पर ही राहत मिलती। फ्रेंक को पढ़ाई के लिए स्कूल भेज दिया गया था जब कि रसल के लिये घर पर ही ट्यूटर का प्रबन्ध कर दिया गया।

बचपन के दिनों में रसल के जीवन में नौकरों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। उनकी याद रसल के मन में बनी रही। फिर भी, माता-पिता से वंचित तथा एकमात्र भाई से भी दूर रहने को मजबूर उनका बचपन कुछ ऐसा बीता कि वे एकान्त-प्रेमी बन गये।

उनके बचपन के सबसे बहुमूल्य क्षण बाग के एकान्त में बीते। अपने मन की बात वे किसी को नहीं बताते थे और कभी गलती से बता दी, तो पछताते थे। बाग के हर एक कोने से वे परिचित थे और हर प्रकार की झाड़ियों, टहनियों तथा फूलों का हर वर्ष, हर मौसम में निरीक्षण करते थे। बहुधा सुबह उठकर सूर्योदय देखने जाते और चारों ओर फैले लाल रंग एवं सुनहरे बादलों को देख तथा हवा की सरसराहट को महसूस करते हुए आनन्दविभोर हो उठते। कई बार सुबह उन्होंने आसमान में दमकते हुए शुक्रतारे को देखा। एक बार तो उसे जंगल में जलता हुआ दीपक समझ बैठे। अपनी जीवनी में उन्होंने लिखा है, "मेरे बचपन के सम्पूर्ण काल में मुझे प्रकृति, पुस्तकों तथा कुछ आगे चलकर गणित शास्त्र, ने ही एकाकीपन तथा निराश में पूर्णत: डूब जाने से बचाया। बचपन की पहली याद उन्हें गीली बर्फ पर चलने तथा कटे हुए पेड़ की लकड़ी के गट्ठर की थी और दूसरी उस समय की जब वे चार वर्ष के थे और उनके जन्म दिवस पर उन्हें एक दुन्दुभी दी गई थी। बचपन में रसल को स्केटिंग का बहुत शौक था, और कई बार तो सुरक्षा की चिंता छोड़ वे स्केटिंग के लिए निकल जाते थे।

ग्यारह वर्ष की उम्र में अपने भाई फ्रेंक की सहायता से रसल ने यूक्लिड का अध्ययन आरम्भ किया। उनके जीवन में यह एक बहुत बड़ी घटना थी—उतनी ही महत्त्वपूर्ण जितना प्रथम प्रेम। गणितशास्त्र की कठिन से कठिन बातें भी रसल को काफी आसान लगीं और उन्हें अपनी बुद्धि पर विश्वास होने लगा। दस वर्ष की उम्र से लेकर ३८ वर्ष के

समय तक, जब उन्होंने अपने गुरु तथा मित्र ह्वाइट हेड के साथ मिलकर 'प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका' लिखी, रसल के लिए गणितशास्त्र सबसे अधिक रोचक विषय ही नहीं वरन् सबसे बड़े आनन्द का स्रोत भी रहा। रात को चुपचाप, सबसे छिपकर रसल गणित के कठिन प्रश्नों का उत्तर खोजते रहते थे। परन्तु गम्भीर विषयों में रुचि रखते हुए भी वे खेल-कूद व शैतानियों में आम बच्चों से पीछे नहीं थे। एक बार एक बहुत बड़े व ऊंचे पेड़ पर चढ़कर उल्टे लटक गये और खूब शोर मचाया। जोर-जोर से चीखने लगे। पेड़ के नीचे खासी भीड़ जमा हो गई। लोग सोचने लगे, बेचारे लड़के को नीचे जमीन पर कैसे उतारा जाये। जब उन्होंने देखा कि मामला गम्भीर होता जा रहा है तो वे अचानक सीधे हो गए और चुपचाप नीचे उतर आये।

रसल के पिता कैम्ब्रिज में पढ़े थे, उनके भाई आक्सफोर्ड में और स्वयं रसल भी कैम्ब्रिज पहुंचे। कैम्ब्रिज में पहुंचते ही उन्हें सब कुछ बहुत अच्छा लगने लगा। उनमें से अधिकांश लोग, जो बाद में उनके मित्र बने, प्रथम सप्ताह में ही उनसे मिलने आये। यह महज संयोग नहीं था। रसल के शिक्षक ह्वाइट हेड का इसमें हाथ था। दो विद्यार्थी जो नये गये थे—रसल तथा सैंगर—उनकी ओर वहां के लोगों का ध्यान उन्होंने आकर्षित किया। सैंगर रसल के खास मित्र बने। दोनों की एक ही तरह के विषयों में रुचि थी। घण्टों साथ बैठकर वे दोनों गणित की समस्याओं से जूझा करते थे।

सैंगर के बारे में रसल ने लिखा है, "वह बेहद चुस्त और कुशाग्र बुद्धि था। जब तक मैं समझ पाता कि समस्या क्या है, वह उसका आधे से ज्यादा निदान निकाल चुका होता। वह मेरे परिचित लोगों में सबसे दयालु व्यक्ति था।" इस बात को रसल का अत्यधिक संतोष था कि सैंगर के जीवन के अन्तिम वर्षों में उनके बच्चे भी सैंगर को उतना ही प्यार करने लगे थे जितना कि वे स्वयं करते आये थे। सैंगर ने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। वे बहुत अच्छे अर्थशास्त्री तो थे ही, साथ में अनेक भाषाओं के ज्ञाता भी थे। सन् १९३० में हुई सैंगर की मृत्यु, रसल के लिए बहुत बड़े दु:ख का कारण बनी।

ह्वाइट हेड कैम्ब्रिज की छात्रवृत्ति परीक्षा के परीक्षक थे और वे रसल की प्रतिभा को आरम्भ में ही पहचान गए थे। रसल को उन्होंने छात्रवृत्ति के लिए चुना और वहां के अन्य प्रतिभाशाली व विद्वान् छात्रों से उनका परिचय कराया। युवावस्था में बनाये गये मित्रों से कई के साथ बहुत समय तक रसल की घनिष्ठता बनी रही। इनमें क्रौम्पटन तथा थियोडोर नाम के दो भाई थे जिनके पिता ने प्लेटो की 'रिपब्लिक' का अनुवाद किया था। इन दो भाइयों के चार और भाई-बहन थे। सभी भाई-बहन इतने कुशाग्र बुद्धि थे कि उनमें से प्रत्येक को शिक्षा के सम्पूर्ण काल तक छात्रवृत्ति मिलती रही। पढ़ाई पर उनके माता-पिता को जरा भी खर्च नहीं करना पड़ा। रसल के अनुसार बुद्धि के अतिरिक्त रूप में भी उनमें कोई कम न था। क्रौम्पटन की नीली आंखें शैतानी से भरी रहती थीं। थियोडोर सबसे छोटा व सबका लाड़ला था। थियोडोर से जो भी मिलता था, उसे प्यार करने लगता था। औरतें तो उस पर मरती थीं। क्रौम्पटन उसे बहुत चाहता था। दोनों भाइयों ने महान् आदर्श तथा उच्च विचारों से प्रेरित होकर जीवन बिताया।

१६०५ में केवल ३४ वर्ष की अवस्था में थियोडोर दरिया में डूबकर मर गया। क्रौम्पटन का जीवन वर्षों तक इस सदमे के प्रभाव में बीता। उस घटना के समय रसल ने कई सप्ताह क्रौम्पटन के पास बिताये और उसे सांत्वना दी। उसके दुःख में भाग लेते हुए रसल ने भी उस पीड़ा का अनुभव किया। क्रौम्पटन की याद करते हुए रसल लिखते हैं कि उसकी सबसे पहली स्मृति उस दिन की है जब वह कैम्ब्रिज की सीढ़ियों में विलियम ब्लैक की कविता 'टाइगर-टाइगर बर्निंग ब्राइट' की सारी की सारी पंक्तियां उद्धृत करता हुआ जा रहा था। रसल ने इसके पहले ब्लैक का नाम तक नहीं सुना था और इस कविता को सुनकर इतने प्रभावित हुए कि उनका सिर चकराने लगा। क्रौम्पटन की उनके बारे में क्या राय है, इसकी चिन्ता रसल को बनी रहती थी। वे सदा यही चाहते थे कि क्रौम्पटन उनके बारे में अच्छी राय रखें। रसल उनके गुणों का वर्णन करते हुए नहीं थकते थे। क्रौम्पटन को गन्दे रहने का शौक था; साथ ही वह बेहद मजाकिया किस्म का व्यक्ति था। इन सभी बातों का स्नेह पूर्वक

वर्णन किया है रसल ने अपनी आत्मकथा में।

कैम्ब्रिज में रसल के अनेक परिचितों व मित्रों में से एक थे दार्शनिक मैकटागार्ट। रसल उनके विषय में बताते हैं, "वे मुझसे भी अधिक शर्मीले व्यक्ति थे।" उनका रसल पर बहुत प्रभाव पड़ा और उनके प्रभाव में आकर ही वे कई वर्षों तक जर्मन दार्शनिक हेगल के अनुयायी बने रहे। बाद में मैकटागार्ट रसल के युद्ध-विरोधी विचारों के कारण उनसे बहुत नाराज हुए। यहां तक कि कैम्ब्रिज से रसल को हटाने की उन्होंने कोशिश की और उसमें सफल भी हुए।

जी० ई० मूर एक युवा मित्र थे, कैम्ब्रिज के प्रतिभाशाली विद्यार्थी और बाद में विख्यात दार्शनिक। रसल उनसे विशेष रूप से प्रभावित हुए। रसल के लिए 'जीनियस'-सम्बन्धी आदर्श मूर ही थे। मूर भी मैकटा-गार्ट के दर्शन से प्रभावित हुए पर रसल की अपेक्षा शीघ्र ही इस प्रभाव से मुक्त हो गये। मूर के प्रभाव में आने के बाद ही रसल भी हेगल तथा काण्ट के प्रभावों को छोड़ पाये तथा अपने दार्शनिक चिन्तन को नया मोड़ दे सके। मूर का सिगार जलाने का तरीका उनके मित्रों के आमोद का विषय था—वह माचिस की एक तीली जलाते और किसी बहस में पड़ जाते। वह तीली बुझते ही दूसरी जल उठती पर सिगार बिना जला रह जाता। रसल लिखते हैं कि यह मित्रों को हंसाने वाली बात ही नहीं, वरन मूर के स्वास्थ्य के लिए भी अच्छी बात थी कि जितनी देर वह बहस करते रहते थे, उतनी देर सिगार नहीं पी पाते थे।

कैम्ब्रिज के संदर्भ में रसल ने यह माना है कि कक्षा में होने वाले व्याख्यानों से उन्होंने ज्यादा कुछ नहीं सीखा। स्वाध्याय से, मित्रों से तथा वहां के खुले बौद्धिक वातावरण से ही उन्होंने बहुत कुछ सीखा। उन्होंने यह बात छोटी उम्र में ही सीख ली कि वास्तविक शिक्षा व ज्ञान कक्षा में दिये गए लेक्चर द्वारा उपलब्ध नहीं होते। शिक्षक की अपने विद्यार्थी के व्यक्तित्व में रुचि हो, वे उसे प्रेरणा दें तथा ज्ञान के नये-नये स्रोतों का परिचय दें—यही सच्ची शिक्षा है। रसल के शिक्षक जेम्स वार्ड उन्हें अनेक पुस्तकें पढ़ने को देते थे। उन्होंने दो जर्मन विचारकों की

एक-एक पुस्तक रसल को पढ़ने को दी। ये दो लेखक थे फ्रेगे व जार्ज केण्टोर। इन दोनों विचारकों की इन दो पुस्तकों में रसल को वह ज्ञान मिला जिसकी उन्हें खोज थी और जो उन्हें कैम्ब्रिज में नहीं मिल पाया था। धीरे-धीरे उनको दर्शनशास्त्र के अध्ययन में काफी आनन्द आने लगा।

कैम्ब्रिज में एक संस्था थी 'द सोसाइटी' जिसमें प्रत्येक वर्ष की कक्षा से एक-दो छात्र शामिल किये जाते थे। यह संस्था सन् १८२० से चली आ रही थी और अनेक महान् विद्वान् इसके सदस्य रह चुके थे। इसकी सदस्यता बहुत कम लोगों को उपलब्ध होती थी। रसल ह्वाइट हेड की मेहरबानी से इसके सदस्य बने। उनके लिए यह सदस्यता बड़े आनन्द का स्रोत बनी। 'सोसाइटी' को उसके सदस्य वास्तविक संसार तथा बाकी सब कुछ को मिथ्या कहते थे। जो लोग इसके सदस्य नहीं थे, उन्हें फिनो-मिना कहा जाता था। सोसाइटी के सदस्य देश-काल के बन्धनों से मुक्त माने जाते थे—इस प्रकार जर्मन आदर्शवाद का मज़ाक बनाया जाता था।

रसल स्पष्टत: स्वीकार करते हैं कि उन्होंने बौद्धिक ईमानदारी की आदत कैम्ब्रिज में रहकर ही डाली। वहां का वातावरण उन्हें बहुत रास आया। वहां के लोगों की (बौद्धिक) भाषा उनकी अपनी भाषा की तरह थी। वहां अपने विचारों को व्यक्त करने पर पागल अथवा अपराधी करार दिये जाने का भय उन्हें नहीं था। संकीर्ण नैतिकता के वातावरण से निकलकर ऐसी जगह पहुंचने पर, जहां तीव्र बुद्धि तथा स्पष्ट चिन्तन को महत्त्व दिया जाता था, उन्हें परम आनन्द की अनुभूति हुई थी। यहीं पर उनके ऐसे मित्र बने, जिनसे आजीवन मित्रता बनी रही। यहां उन्होंने तीन वर्ष गणितशास्त्र तथा चौथे वर्ष दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया।

सन् १८८९ की गर्मी की छुट्टियों में रसल अपने चाचा के घर पर रहे थे। यह स्थान था फ्रायडे हिल। जहां उनकी भेंट हुई अपनी भावी (प्रथम) पत्नी एलिस स्मिथ से। उन दिनों वे अमेरिका से इंग्लैण्ड आई हुई थीं और अपने परिवार के साथ रह रही थीं। पूर्वी अमेरिका के एक विख्यात विद्यालय ब्रिनमौर में शिक्षा प्राप्त कर रही एलिस अनिंद्य सुन्दरी

थीं और उनके तौर-तरीके राजसी किस्म के थे। रसल उनके इन सब गुणों के अतिरिक्त जिस बात से प्रभावित हुए, वह था उनका स्वतन्त्रता-प्रेमी स्वभाव। अमेरिका से अकेली ही यात्रा करके वह इंग्लैण्ड आई थीं। प्रसिद्ध अमेरिकी कवि वाल्ट विटमैन से उनकी अच्छी मित्रता थी। एलिस के भाई लोगन रसल से सात वर्ष बड़े थे। वह अमेरिका के क्वेकर मत के अनुयायी थे तथा इस मत का समाजवाद से सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। रसल उनके विचारों से काफी प्रभावित हुए। धीरे-धीरे उनका स्मिथ परिवार से सम्पर्क बढ़ने लगा। लोगन के प्रभाव में आकर उन्होंने उस समय की सभ्यता से परिचय प्राप्त किया। अनेक विद्वानों से परिचय हुआ तथा यूरोपीय कलाकार माने तथा डेगा आदि के विषय में जानने योग्य बहुत-सी बातें सीखीं। माने व डेगा उस समय यूरोप के कला-जगत् में वही स्थान रखते थे जो बाद में मातीस तथा पिकासो को मिला।

सन् १८९३ में रसल बालिग हुए और उसी वर्ष उन्हें गणित में ट्राइ-पास प्राप्त हुई। एलिस इन दिनों कैम्ब्रिज आई हुई थी। रसल का आत्म-विश्वास बढ़ गया था। एक दिन सुबह वे दोनों बाहर घूमने निकले। उस सुबह का बड़ा सुन्दर वर्णन रसल की आत्म-कथा में मिलता है, "सुबह में बहुत ताजगी थी और मुझे लगा कि शायद मनुष्य जीवन में आनन्द सम्भव है। जब हम जंगल में बैठे थे, मैं अपनी भावनाओं को टटोलने से अधिक कुछ न कर सका।" घर लौटने के बाद, नाश्ता कर चुकने पर रसल ने साहस करके एलिस के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। उत्तर 'हां' या 'ना' में से कोई नहीं मिला। कुछ समय और बीता। एक रोज खूब जोर का हिमपात हुआ। सारा लंदन शहर छः फुट बर्फ में डूबा पड़ा था। चारों ओर एक अजीब-सा एकान्त छाया हुआ था। ऐसे मौसम में रसल एलिस के माता-पिता के घर उससे मिलने पहुंचे। इस अवसर पर उन्हें जिस निकटता की अनुभूति हुई, उससे उन्हें अनिर्वचनीय सुख मिला।

इन दिनों रसल नैतिक विज्ञान पर ट्राइपास कर रहे थे। प्रेम के उतार-चढ़ावों के बावजूद उनका अध्ययन-कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। नैतिक विज्ञान के ट्राइपास के साथ ही उन्हें एलिस से विवाह की

रजामन्दी भी प्राप्त हुई। परन्तु साथ ही एक भयंकर स्थिति पैदा हो गई—परिवार के लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि रसल परिवार में अनेक बीमारियां रही हैं। उनके एक चाचा पागल हो गए थे। पिता के बारे में कहा जाता था कि उन्हें मिर्गी के दौरे पड़ते थे। रसल व एलिस ने तय किया वे दोनों विवाह तो करेंगे परन्तु उनके बच्चे नहीं होंगे। दोनों परिवार-नियोजन में काफी विश्वास रखते थे। धार्मिक दृष्टि से उन दिनों परिवार नियोजन को बहुत बुरा माना जाता था।

रसल को उन दिनों अनेक विरोधी तथा भय-मिश्रित भावनाओं से गुजरना पड़ा। एलिस से विवाह करना चाहते हुए भी वे इस विचार से डरने लगे। उन्हें दुःस्वप्न भी सताने लगे। एक बार उन्हें सपना आया कि उनकी मां मरी नहीं, वरन् पागल हो गई हैं। इस स्वप्न के कारण भी वे भयभीत तथा परेशान रहे। उन दिनों जो दहशत उनको हुई और जो भय मन में पैदा हुए, उनसे उन्हें कभी भी पूर्णतः मुक्ति नहीं मिली। इसी प्रकार के भय के कारण वे कई वर्षों तक हर तरह की गहरी भावनाओं से कतराते रहे और अनासक्त भाव से जीने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु उन दिनों प्रेम की भावना इतनी प्रबल थी कि कोई चीज या बात जो एलिस से जुड़ी हुई नहीं होती थी, उन्हें भाती ही नहीं थी या उसमें कोई रुचि नहीं रहती थी। परिणामस्वरूप सन् १८९४ में उनका एलिस से विवाह हो ही गया।

प्रथम विवाह के आरम्भिक वर्ष हर्ष तथा उल्लासपूर्ण थे। उन वर्षों में रसल ने काफी बौद्धिक कार्य किए। दर्शन व गणित के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें पढ़ीं तथा काफी मौलिक रचनाएं लिखीं। उन्होंने अपने जीवन के इस सर्वाधिक रचनात्मक काल की उपलब्धियों का श्रेय अपनी पत्नी एलिस को दिया है। अपने काम तथा पत्नी से वह इतने सन्तुष्ट थे कि बाहर से किसी प्रेरणा की उन्हें जरूरत न थी।

सन् १८९६ ई० में वे एलिस के साथ अमेरिका गए। वहां पर उनको अनेक प्रकार के रोचक अनुभव हुए। वे सुप्रसिद्ध अमेरिकी कवि वाल्ट विटमैन के घर गए, ब्रिनमौर विद्यालय में अ-युक्लिडियन रेखा गणित पर लेक्चर दिया और अनेक महिलाओं तथा पुरुषों से मिले। जर्मन विशेषज्ञों

—विशेषकर गणित के क्षेत्र में—की बौद्धिक श्रेष्ठता का ज्ञान भी उनको अमेरिका जाने के बाद हुआ। अपनी इस प्रथम अमेरिकी यात्रा के दौरान रसल जिन लोगों से मिले, वे लोग उन्हें अपने देशवासियों के मुकाबले में काफी भोले लगे। कई लोगों ने उनसे पूछा कि इंगलैण्ड में लेखक आस्कर वाइल्ड को जेल क्यों हुई। दो महायुद्धों के बाद अमेरिका का भोलापन किस हद तक नष्ट हो गया था, यह रसल ने बाद में समझा होगा।

उन्होंने यूरोप तथा अमेरिका का कई बार भ्रमण किया। प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व वे लगभग हर वर्ष इटली जाते रहे। यह सिलसिला युद्ध छिड़ने पर ही खत्म हुआ और फिर सन् १९३९ ई० में ही उनको पुनः इटली जाने का अवसर मिल पाया। आरम्भिक दिनों में प्रथम युद्ध के पूर्व, जब वे वियना गए तो उन्होंने शहर का चप्पा-चप्पा छान डाला।

अपनी अनेक यूरोपीय यात्राओं में से एक विशेष यात्रा की स्मृति रसल ने अपने बौद्धिक विकास से जुड़ी हुई पाई। सन् १९१० ई० में पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन परिषद् की मीटिंग में उनकी भेंट गणितज्ञ पिअनो से हुई। यह घटना उनके बौद्धिक जीवन में नया मोड़ ले आई। गणित की जिन मूल समस्याओं से वह वर्षों से जूझते आए थे, उन्हींके संबंध में अचानक प्रकाश दिखाई देने से उन्हें वैसी ही उत्तेजना तथा उल्लास की अनुभूति हुई जैसी किसी कठिन पहाड़ पर चढ़ने के बाद, धुंध छंट जाने तथा चारों ओर का दृश्य स्पष्ट दिखाई देने पर होती है। वह तुरन्त 'द प्रिंसिपल्स आफ मैथमेटिक्स' लिखने में जुट गए और सन् १९०८ ई० तक पुस्तक तैयार हो गई।

बीसवीं सदी के आरम्भ होने के बाद धीरे-धीरे विजय की वह भावना लुप्त होने लगी जो पारिवारिक तथा बौद्धिक सन्तोष से जुड़ी हुई थी। जिस घटना का उनके संवेदनशील हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, वह थी श्रीमती ह्वाइट हेड की बीमारी। दर्द से तड़पती हुई श्रीमती ह्वाइट हेड को देखकर रसल के मन में विचार आया कि मानव जीवन का अकेलापन असह्य है। धार्मिक प्रेम, अधिकतम गहनता, जिसकी शिक्षा धार्मिक शिक्षक देते हैं, के अतिरिक्त कोई चीज़ इसका पार नहीं पा सकती। ह्वाइट हेड का सबसे छोटा बेटा, जिसकी उम्र उस समय तीन वर्ष थी,

उस समय कमरे में था। उसका हाथ पकड़कर रसल उसे बाहर ले गए। वह उनसे एकदम हिल गया। उस दिन से सन् १९१२ ई० तक, जब वह लड़ाई में मारा गया, दोनों अच्छे मित्र बने रहे।

ह्वाइट हेड रसल के शिक्षक ही नहीं, मित्र भी थे। रसल के उनके परिवार से भी निकट सम्बन्ध थे। रसल ह्वाइट हेड को बहुत अच्छा शिक्षक मानते थे जो कभी अपने विद्यार्थियों पर कोई दबाव नहीं डालते थे और कभी कोई व्यंग्यात्मक बात कहकर उनका जी नहीं दुखाते थे। वे बहुत नम्र स्वभाव के व्यक्ति थे और अपनी पत्नी व परिवार के प्रति बेहद समर्पित थे। आरम्भ में उन्हें अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। रसल कभी-कभी श्रीमती ह्वाइट हेड को चुपचाप आर्थिक सहायता पहुंचा दिया करते थे। श्रीमती ह्वाइट हेड को दर्द से तड़पता देखकर रसल को लगा कि पांच मिनट में उनकी दुनिया इधर से उधर हो गई। वह उस दिन गिलबर्ट मरे की एक भावपूर्ण कविता सुनने के बाद काफी विचलित होकर आए थे। इस अनुभव ने रसल को युद्ध तथा साम्राज्यवाद का विरोधी तथा शान्तिवादी बना दिया। उनका हृदय सौन्दर्य-प्रियता की रहस्यानुभूति, बच्चों के प्रति अत्यधिक प्रेम और मानव जाति के उद्धार की प्रबल कामना से भर उठा। पीड़ा को ही ज्ञान का द्वार बनाने की चुनौती उन्होंने स्वीकार कर ली। उन क्षणों की संवेदनाओं का कुछ अंश उनके हृदय में आजीवन रहा। बच्चों के प्रति प्रेम, छोटी-छोटी दुर्घटनाओं के प्रति उदासीनता तथा सभी मानवीय सम्बन्धों में एक भावात्मक पुट—यह सब तभी से सम्भव हुआ।

इसी बीच रसल को लगने लगा कि अब वे अपनी पत्नी एलिस से प्रेम नहीं करते। एलिस उनसे पांच वर्ष बड़ी थी। रसल को उसके व्यक्तित्व में अनेक अवगुण दिखाई देने लगे। विशेष रूप से नैतिक दृष्टि से रसल को वह ज्यादा कट्टर लगने लगी थी। रसल सत्यवादिता के कायल थे। उन्होंने एलिस को अपनी भावनाओं से अवगत कराया और अलग-अलग कमरों में रहने लगे।

पत्नी से शारीरिक व मानसिक दूरी बढ़ने पर वे काफी अकेलापन महसूस करने लगे। उन दिनों उन्होंने कई धार्मिक पुस्तकें पढ़ डालीं और

'ए फ्रीमैन्स वर्शिप' नामक पुस्तक की रचना की। नौ वर्ष तक रसल तथा एलिस, शारीरिक सम्बन्धों का अन्त होने के बावजूद, पति-पत्नी बने रहे। इन तनाव तथा परेशानियों के दिनों में रसल ने अथक बौद्धिक परिश्रम किया। उनकी महत्त्वपूर्ण खोज 'द थ्योरी आफ डिसक्रिप्शन' तथा 'द थ्योरी आफ टाइम्स' क्रमशः सन् १९०५ तथा १९०६ ई० में पूर्ण हुईं। उन दिनों वे दस से बारह घण्टे रोज़ काम करते थे।

सन् १९०९ से १९१० ई० के बीच भी मेहनत का दौर बना रहा। तर्क तथा गणित दोनों ही क्षेत्रों में 'वर्ग' के प्रत्यक्ष को लेकर अनेक सैद्धान्तिक प्रश्न उठ रहे थे। कुछ जटिल पहेलियां, जैसे यदि एक नाई ऐसा है जो उन सभी और केवल उन्हीं की हजामत बनाता है जो अपनी हजामत नहीं बनाते तो प्रश्न है—वह अपनी हजामत बनाता है या नहीं? प्रत्येक वर्ग के कुछ सदस्य होते हैं। प्रश्न है कि क्या कोई वर्ग स्वयं अपना सदस्य होता है? यदि एक झूठा व्यक्ति कहे कि मैं सदा 'झूठ बोलता हूं' तो उसकी बात को सच माना जाए या झूठ। 'झूठे का विरोधाभास' नामक समस्या में भी रसल को काफी रुचि रही। इन सब तार्किक समस्याओं को केवल मनोविनोद का ही विषय न मानकर उन्होंने इनके उत्तर तर्कशास्त्र की भाषा में प्रस्तुत किए।

रसल केवल तर्कशास्त्री अथवा गणितज्ञ या रूखे दार्शनिक मात्र नहीं थे। उनकी साहित्यिक क्षमता भी उनकी विभिन्न रचनाओं में स्पष्ट व्यक्त हुई है। उनका अपने समकालीन लेखकों, वैज्ञानिकों, विचारकों तथा सामाजिक व राजनैतिक नेताओं व सुधारकों सभी से परिचय था। इनमें से अनेक के साथ उनका पत्र-व्यवहार भी रहा। मित्रों, सम्बन्धियों को भी उन्होंने अनेक पत्र लिखे। इन पत्रों में भी उनकी दार्शनिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति मिली। अपने समकालीन बौद्धिक तथा सामाजिक व राजनैतिक जीवन के प्रति वे सदा सतर्क रहते थे। शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति उस समय यूरोप या इंगलैण्ड में होगा जिसको रसल ने कम से कम एक पत्र न लिखा हो। रसल की आत्म-कथा का काफी भाग उनके द्वारा लिखे गए पत्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के पत्र लिखे जाते थे और

उनकी विषय-वस्तु भी भिन्न होती थी। अपनी प्रथम पत्नी एलिस को भी विवाह के आरम्भिक वर्षों में उन्होंने अनेक सुन्दर-स्नेहपूर्ण पत्र लिखे और उन्हें अपने मन में तथा अपने बौद्धिक जीवन में होने वाली सभी छोटी-बड़ी घटनाओं से अवगत कराया। कवि मित्र गिलबर्ट मरे तथा ब्रिनमौर कालिज (अमेरिका में) की अध्यापिका लूसी मार्टिन डोनेली को उन्होंने अनेक पत्र लिखे जिनमें उन्होंने जीवन की गूढ़ समस्याओं पर अपने विचार तथा भावनाएं और अनेक प्रकार की दार्शनिक मनःस्थितियों को व्यक्त किया। लूसी को लिखे एक पत्र में उन्होंने किताबी दुनिया में रहने के बारे में लिखा, "वास्तविकता ही इस बीमारी का इलाज है परन्तु इसे प्राप्त करना कठिन है—वास्तविक जीवन का अर्थ है दूसरे मनुष्यों के निकट सम्बन्ध में बिताया गया जीवन—अथवा अपने ही अन्दर धार्मिक तथा कलात्मक अनुभूतियों को जीना। सब कुछ अतीत में खोता जाता है, सब कुछ नगण्य है, संघर्ष, व्यथा, सब अर्थहीन हैं—केवल एक शब्द-घोष, एक अर्थहीन उफान शेष रह जाता है। अपने विचारों में ही हम भगवान् हैं, कर्म तथा इच्छा के क्षेत्र में तो हम परिस्थितियों के दास हैं। जैसे-जैसे वर्ष पर वर्ष जुड़कर जीवन का बोझ बढ़ाते जाते हैं, हम बहुत कुछ सीखते रहते हैं और इनमें जो मुख्य बात है वह यह कि धीरे-धीरे हमारा प्रेम मननशील होता जाता है।" एक अन्य मित्र लोएस को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा कि "सूर्य का प्रकाश बहुत अच्छा लगता है, पर धुन्ध और कोहरे का प्रभाव कुछ ऐसा है, जो सूर्य के प्रकाश से प्राप्त नहीं हो सकता। मेरे विचार में जीवन का रहस्यशून्य, बुद्धिवादी दृष्टिकोण जीवन के सबसे अधिक सुन्दर व महत्त्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा करता है।"

"मनुष्य जीवन की दिव्यता उसके लिए अधिक होती है जो ईश्वरीय तेज से अभिभूत नहीं है। मानवीय बन्धुत्व अधिक कोमल तथा निकटतापूर्ण हो उठता है, इस भावना के कारण कि हम सब बहिष्कृत लोग हैं जो एक मित्रता-शून्य तट पर पड़े हुए हैं।"

एक सूने समुद्र तट की बात रसल के मन में बार-बार आती रहती है। संसार में कितना दुःख है, मानव जीवन कितना दुःखपूर्ण हो सकता है, इस विषय पर एक पत्र में रसल ने लिखा, "संसार मुझे भयावह

जान पड़ता है। अधिकांश लोगों का जीवन बहुत अधिक दुःख से भरा है। मैं अक्सर सोचता हूं, लोग इसे क्यों बर्दाश्त करते हैं। लोगों को ठीक से जानने का अर्थ है, उनके जीवन की त्रासदी को जानना, अधिकतर यही जीवन का केन्द्र होती है और इसी के इर्द-गिर्द जीवन बना रहता है।"

सन् १९१० में होने वाले चुनाव के समय रसल उदारवादियों की पार्टी के लिए काम कर रहे थे। एक सदस्य जिसे जिताने का वे प्रयत्न कर रहे थे फिलिप मोरेल्ल थे। इनसे रसल की जान-पहचान अपने साले लोगन के कारण हुई (जिनके वे अच्छे मित्र थे)। फिलिप की पत्नी ड्यूक ऑफ पोर्टलैण्ड की बहन श्रीमती आटोलाइन थीं जिन्हें वे बचपन से थोड़ा-बहुत जानते थे। इनके सम्पर्क में रसल को वह सुकून मिला जो अपने वैवाहिक जीवन में भी नहीं मिला था।

जल्दी ही दोनों परस्पर प्रेम-बन्धन में बंध गये। वे प्रथम पत्नी को त्याग कर आटोलाइन को पाने के लिए बेचैन रहने लगे। नौ वर्ष का ब्रह्मचर्य खत्म हुआ। आटोलाइन उनकी प्रेमिका बन गई। एलिस को रसल ने सब कुछ बता दिया। वह बहुत नाराज़ हुई और उसने अदालत में श्रीमती आटोलाइन का नाम प्रकट करने की धमकी भी दी। उस दिन से रसल के प्रथम विवाह का अन्त हुआ। उसके बाद वे लगभग ४० वर्ष बाद एलिस से एक पुराने मित्र की तरह सन् १९५० ई० में मिले और उन्हें ज्ञात हुआ कि एलिस सारे जीवन उन्हें चाहती रही।

श्रीमती आटोलाइन से रसल बहुत अधिक प्रभावित हुए। वह सुन्दर, कोमल, स्फूर्तिपूर्ण महिला थी। उसके सम्पर्क में आने के बाद रसल को कठिन संयम से उत्पन्न तनाव से काफी हद तक मुक्ति मिली। उन दोनों के बीच एक सहानुभूति की भावना थी जो जीवन-पर्यन्त बनी रही। सन् १९१६ के बाद उनका संबंध प्रेमियों का नहीं रहा, पर उनकी मित्रता बनी रही। इस संदर्भ में रसल ने स्पष्ट रूप से यह माना कि स्त्रियों का प्रभाव पुरुष के जीवन पर शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टियों से उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना पुरुष का स्त्री के जीवन पर। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है, "जिन्हें मैंने प्रेम किया है, उन नारियों के मैं बिना कहीं ज्यादा संकीर्ण विचारों का व्यक्ति होता।" इस संकीर्णता

को दूर करने में श्रीमती आटोलाइन का बहुत बड़ा हाथ था।

अंग्रेजी के लेखक जोसफ कोनरेड से सन् १६१३ में रसल की मित्रता हो गई। वे राजसी तबीयत के पोलिश व्यक्ति थे जिन्हें समुद्र तथा इंगलैण्ड से रोमानी किस्म का प्रेम था। कोनरेड के साथ रसल के मनोभावों का ऐसा अद्भुत मेल बैठा कि प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम बार मिलने पर भी—दोनों में सद्भावना बनी रही। दोनों ही एक-दूसरे को बहुत मानते थे। कोनरेड की कल्पना में रसल ने अकेलेपन तथा अजनबीपन के भय की प्रचुरता पाई जो कि उनके लेखन की विशिष्टता बन गई। रसल ने अपने सबसे छोटे बेटे का नाम जान कोनरेड रखा; 'जान' अपने पिता व दादा के नाम से तथा 'कोनरेड' मित्र के नाम से लिया। इस प्रकार कोनरेड रसल के छोटे बेटे के गाड फादर बन गये। कोनरेड की उदात्त श्रेष्ठता की ज्योति रसल के हृदय में सदा उजागर रही।

सन् १६१४ में रसल पुनः अमेरिका गये और वहां वे विलियम जेम्स के साथ हावर्ड में ठहरे। वहां उनकी मुलाकात विख्यात विचारक सान्त्याना तथा रोएस से हुई। उनकी कक्षा में १२ विद्यार्थी थे। उनमें से एक थे टी० एस० इलियट। इस विख्यात बनने वाले कवि से रसल की बहुत समय तक मित्रता रही। हावर्ड से वे एनआवर तथा वहां से शिकागो गये। वहां पुनः एक प्रेम-प्रसंग उठा जिसका अन्त प्रथम विश्वयुद्ध की घोषणा के साथ हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध का रसल पर उतना ही प्रभाव पड़ा जितना आटोलाइन के प्रेम का। वे अपने को गेटे के फाउस्ट की तरह मानते हैं। जैसे फाउस्ट का जीवन मेफेस्टोफेलीज से मिलने के पहले और बाद में एकदम भिन्न था वैसे ही रसल का जीवन भी प्रथम विश्वयुद्ध के पहले व बाद में एकदम भिन्न था।

रसल ने एक अजीब-सी बात देखी। उनके जीवन में युद्ध की घोषणा के बाद बेहद जागृति तथा क्रियाशीलता आ गई जान पड़ी। उन्होंने देखा कि लोग लड़ाई के नाम पर प्रसन्न हैं और उन्हें विध्वंस से भी कोई विशेष वितृष्णा नहीं। इलियट (टी० एस०) के साथ उनका युद्ध के सन्दर्भ में एकमत नहीं था। इलियट ने रसल से एक बार स्पष्ट कह दिया था, 'मैं शान्तिवादी नहीं हूं।' मतभेद होते हुए भी दोनों में अच्छी मित्रता हो गई

थी। बाद में इलियट के विवाह के बाद उनकी पत्नी से भी रसल की अच्छी पटी। इलियट दम्पती को आर्थिक कठिनाई में पाकर रसल ने उन्हें अपने घर में रहने का निमन्त्रण दे डाला और दोनों को एक कमरा दे दिया और अन्य प्रकार से भी आर्थिक सहायता दी।

सन् १९१५ में रसल ने 'प्रिन्सपल्स आफ सोशल रीकन्स्ट्रक्शन' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने यह समझाने का प्रयत्न किया कि मनुष्य लड़ाई क्यों करते हैं। रसल के अनुसार मनुष्य में दो मूल प्रवृतियां होती हैं। एक रचनात्मक तथा दूसरी सत्तापरायण तथा आधिपत्य की। वे रचनात्मक प्रवृत्ति को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। रसल के युद्ध-विरोधी विचारों के कारण उनकी जिन लोगों से मित्रता हुई, उनमें एक थे प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार डी० एच० लारेन्स। पर यह मित्रता बहुत कम समय तक चली। रसल संसार को मनुष्य के जीने लायक स्थान बनाना चाहते थे परन्तु उन्होंने देखा लारेन्स (डी० एच०) के हृदय में इस कार्य के प्रति कोई सच्ची प्रेरणा नहीं है। उनको लारेन्स की 'लहू' सम्बन्धित रहस्यमय दार्शनिक बात भी पसन्द नहीं आई। अन्त में रसल, ने यही निष्कर्ष निकाला कि लारेन्स अपनी पत्नी की ही बातों को दोहराते थे जो एक बहादुर महिला थी। इन दिनों अपने युद्ध-विरोधी विचारों के सन्दर्भ में रसल को लगातार बन्दी बन जाने तथा मार दिये जाने का भय बना रहा। इसके पहले आटोलाइन से प्रेम के उष्ण काल में रसल को कैन्सर की सम्भावना का भय सताता रहा।

युद्ध के विरोध में बोलने वाली एक आकर्षक महिला कोलेट से मुलाकात का परिणाम हुआ पुन: प्रेम-बन्धन में पड़ना। यह प्रेम युद्ध की भूमिका में पनपा। इसमें गहराई और सघनता थी। इस प्रेम में रसल को मनुष्य के युद्ध के संदर्भ में अभिव्यक्त स्वरूप को देखकर और उसके विषय में विचार करने से उत्पन्न पीड़ा से राहत मिली। युद्ध की भयानकता जितनी मात्रा में सामने आई, उतना ही कोलेट से निकटता में उन्हें आराम मिला।

सन् १९१६ से १९१८ के बीच वे जेल में रहे। युद्ध-विरोधी आन्दोलन में उनके सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण पुलिस पहले ही उनके खिलाफ

थी और कई बार उनकी जान पर खतरा आया। एक बार एक महिला ने बीच में पड़कर उन्हें बचाया। पहले मिन्नत की कि 'ये विख्यात व महान् दार्शनिक हैं, इन्हें छोड़ दो' पर पुलिस के अधिकारी नहीं माने, फिर महिला ने कहा, 'इनके भाई अर्ल हैं।' यह बात सुनते ही पुलिस का डंडा जो रसल पर पड़ने जा रहा था, हट गया। रसल भीड़ में चुपचाप लुप्त हो गये और उनकी जान बची। जेल में रहकर उन्होंने 'इण्ट्रोडक्शन टू मैथमेटिक्स' तथा 'द एनैलिसिस आफ माइण्ड' नामक पुस्तकें लिखीं। पढ़ने-लिखने के काम में व्यस्त रहकर तथा दूसरे बन्दियों के जीवन में रुचि लेकर उन्होंने जेल के दो वर्ष भी खुशी-खुशी काटे। जेल जाने के कारण कोलेट के विरह की व्यथा जरूर सहनी पड़ी। वह एक दिन छोड़कर उनसे मिलने आती। किताबों में छिपाकर उनके बीच प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान भी हुआ। पर रसल के जेल आवास के समय कोलेट का किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम हो गया था। वह रसल से भी सम्बन्ध बनाये रखना चाहती थी परन्तु पहले जैसा आनन्द व उत्साह उनके बीच न रहा। सन् १९२० तक यह प्रेम-प्रसंग धीरे-धीरे खत्म हो गया।

जेल से रसल ने कोलेट व श्रीमती आटोलाइन के अतिरिक्त कवि गिलबर्ट को भी पत्र लिखे। उनको पत्र लिखने वालों में मुख्य थे ई० एम० फौर्स्टर, सी० पी० सिंगर, लोएस डिकिन्सन, जार्ज बर्नार्ड शा तथा रसल के भाई फ्रैंक।

सन् १९१८ में सितम्बर के महीने में वे जेल से छूटे। देर रात तक सड़कों पर घूमते रहे। लोगों को देखते और उनके विचारों को पढ़ने का प्रयत्न करते। युद्ध समाप्त होने वाला था। लोग प्रसन्न थे। रसल को भी खुशी थी पर उनको बेहद अकेलेपन की भावना ने धर पकड़ा। नारी-प्रेम में अकेलेपन से पलायन ढूंढ़ा, पर उसमें भी सफल न हुए। प्रथम विश्व-युद्ध ने उनकी दुनिया ही पलट दी। वे एक किताबी तथा अध्ययन-प्रेमी व्यक्ति ही न रहकर सक्रिय रूप से सार्वजनिक जीवन के प्रश्नों से जूझने लगे। उन्होंने कई तरह की पुस्तकें लिखीं। मनुष्य के स्वभाव के सम्बन्ध में उनके विचार पूर्णतः बदल गये। उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि शुद्धता-वाद हमें सुख की ओर नहीं ले जा सकता। मूल प्रवृत्तियों पर आधारित

आनन्द से ही मानव जगत् को दुःख से बचाया जा सकता है। अधिकतर लोग काफी दुःखी हैं और इस दुःख को ध्वंसात्मक तरीके से व्यक्त करते हैं। लोगों को आनन्द की अनुभूति करने योग्य बनाना है।

सन् १९१६ में रसल का परिचय अपनी होने वाली दूसरी पत्नी डोराबेल से हो चुका था। १९१९ में पुनः भेंट हुई, रसल को बच्चों के प्रति आकर्षण था और पिता बनने की तीव्र इच्छा। डोरा भी सुखी वैवाहिक जीवन तथा बच्चों से भरा-पूरा परिवार चाहती थी। रसल ने पाया कि उसमें जीवन का आनन्द लेने की क्षमता भी थी। यह बात उन्हें खूब भाई। उन्होंने लिखा है, "वह नर्म घास पर नंगे पांव दौड़ना पसन्द करती थी और चांदनी रात में खो जाना उसे पसन्द था।"

सन् १९२० में रसल ने कई देशों का भ्रमण किया। वे रूस भी गये। वहां उन्हें लगभग सभी कुछ भयावह लगा। निष्ठुरता, गरीबी, शक्कीपन, बात-बात पर लोगों को दण्डित करना आदि नकारात्मक बातें इतनी मात्रा में पाईं कि वह सब देखकर उन्हें बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने लेनिन से भी भेंट की परन्तु इस एक घंटे की भेंट के बाद भी उन्हें निराशा हुई। लेनिन उन्हें एक संकुचित, बौद्धिक दृष्टि से सीमित तथा काफी हद तक क्रूर व्यक्ति लगा। लेनिन से हुई मुलाकात का जिक्र रसल ने अपनी पुस्तक 'प्रैक्टिस एण्ड थ्योरी आफ बोलशेविज्म' में किया है। रूस-यात्रा से उनको जो धक्का लगा उससे उबरने में उन्हें कुछ समय लगा।

भाग्यवश इसी बीच उन्हें लेक्चर टूर पर चीन जाने का अवसर मिला। उनके साथ डोरा भी गई। वहां रसल कुछ समय तक गम्भीर रूप से बीमार रहे और डोरा ने उनकी खूब सेवा की। चीन में उन्हें खूब आदर मिला। चीन व जापान की यात्रा से वे सन् १९२१ में इंगलैण्ड लौटे। डोरा इसके पूर्व ही उन्हें अपने मां बनने की खुशखबरी दे चुकी थी। उस समय वह एलिस से डाइवोर्स की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पिता बनने की सम्भावना के विषय में जानकर उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। जीवन उन्हें बहुत प्रिय लगने लगा। सितम्बर, १९२१ में उनका विवाह डोरा से हो गया और नवम्बर में उनकी प्रथम सन्तान का जन्म हुआ। बीमारी के बावजूद चीन में रसल का प्रवास काफी सुखद

था। चीन के प्रति उनके हृदय में सदा कोमल भाव रहे। पिता बनने की अनुभूति उनको खूब रास आई। पितृत्व की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा, "बच्चों के लिए प्राकृतिक स्नेह, उनकी हरकतों को देखकर प्रसन्नता, उत्तरदायित्व की भावना, उनकी रक्षा के प्रत्येक उपाय को सोचना, इसके अतिरिक्त अपने अहं की पूर्ति यह सोचकर कि शायद मेरा बच्चा वह सब कुछ कर दिखायेगा जो मैं भी न कर सका, मृत्यु से पलायन, क्योंकि बच्चे में स्वयं का जीवन-क्रम चलता रहेगा—यह भावना मन को प्रसन्न करती है।"

रसल के दो बड़े बच्चे कैट तथा जान उनके घर चेंलसिया नं० ३१ में पैदा हुए। पर उन्होंने एक घर कारनेल में भी ले लिया था। वहां पर बहुत सुन्दर समुद्र तट था और समुद्र के किनारे दो स्वस्थ बच्चों को खेलते देखकर वे आंतरिक उल्लास की भावना से अभिभूत हो उठते थे। उनकी बेटी लगभग दो वर्ष की थी जब उसने उत्तरी ध्रुव पर एक छोटी कविता ही कह डाली। रसल ने तुरन्त उसे नोट बुक में लिख लिया था। बच्चों की शिक्षा तथा स्वास्थ्य आदि विषयों में वे काफी रुचि लेने लगे। इन्हीं दिनों उन्होंने बच्चों की शिक्षा पर एक पुस्तक लिख डाली। बच्चों के आरम्भिक जीवन की शिक्षा पर उनका विशेष ध्यान गया।

सन् १९२१ से १९२७ तक का जीवन खुशी के साथ-साथ समस्याओं से भी भरा था। आर्थिक समस्याएं मुख्य थीं। इस दौरान रसल ने कई पुस्तकें लिखीं। 'द प्रोस्पेक्ट्स आफ इण्डस्ट्रियल सिविलाइजेशन' सन् १९२२ में, 'द ए बी सी आफ रिलेटिविटी' १९२५ में, 'द फ्यूचर आफ साइन्स' १९२४ में, 'द ए बी सी आफ एटम्स' १९२३ में तथा 'ह्वाट आई बिलीव' १९२५ में छपीं परन्तु सबसे अधिक धन उन्हें शिक्षा पर लिखी गई पुस्तक 'आन एजुकेशन स्पेशली इन अर्ली चाइल्ड' से प्राप्त हुआ जो १९२६ में छपी। इसके कारण उनकी आर्थिक समस्याएं भी कुछ कम हुईं। इसके बाद सन् १९३३ तक स्थिति सुधरती गई। उनकी दो और पुस्तकें 'मैरेज एण्ड मारल्स्' १९२९ में तथा 'द कौंक्वेस्ट आफ हैपिनेस' १९३० में छपीं। ये कृतियां बेहद लोकप्रिय हुईं। इन लोकप्रिय पुस्तकों के अतिरिक्त १९२१ में 'द एनैलिसिस आफ मैटर' तथा

'प्रिन्सिपल्स् आफ मैथमेटिक्स' के नए संस्करण भी छपे।

१९२७ में रसल तथा डोरा ने मिलकर एक स्कूल खोला। स्कूल एक सुन्दर स्थान पर था और रसल यहां पर बहुत कुछ शिक्षा-सुधार चाहते थे; परन्तु यह अनुभव बहुत अच्छा नहीं रहा। सन् १९३१ में वे दुबारा अमेरिका की यात्रा से लौट रहे थे और क्रिसमस का दिन था। ठीक ३० वर्ष पूर्व वह इसी प्रकार क्रिसमस के ही दिन एटलाण्टिक महासागर पर यात्रा कर रहे थे। इन ३० वर्षों में जो परिवर्तन उनकी भावनाओं में आया, उसके सम्बन्ध में वे लिखते हैं, "वक्त मनुष्य को नम्र बना देता है, यह मैं नहीं मानता। वक्त मनुष्य को भयाकुल बना देता है और भय उसे शान्त बना देता है। शान्त होने पर ऐसा लगता है कि वह विनम्र हो गया है। भय के साथ ही प्रेम की आवश्यकता का अनुभव होता है—ऐसी मानवीय ऊष्मा का जो हमें संसार की ठिठुरन से बचाए। जिस भय की मैं बात कर रहा हूं, वह सहज व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न भय नहीं जो मृत्यु या दण्ड आदि से उत्पन्न होता है। मैं सोच रहा हूं एक तात्त्विक भय के बारे में जो आत्मा में प्रवेश करता है, जीवन की महानतम बुराइयों की अनुभूति के साथ—मित्रों द्वारा धोखा, जिनसे हम प्रेम करते हैं उनकी मृत्यु, आम आदमी के स्वभाव में छिपी क्रूरता का साक्षात्कार आदि।" इन अनुभवों के बीच रसल को अपने परिवार की जरूरत महसूस होती है। "मैं अपने बच्चों की निकटता, अग्निपार्श्व की ऊष्मा, ऐतिहासिक क्रमबद्धता का सहारा और एक महान् देश की नागरिकता चाहता हूं।" इस प्रकार वे अपनी तुलना किसी भी साधारण मध्य आयु के व्यक्ति से करते हैं और कहते हैं कि एक दार्शनिक में तथा अन्य व्यक्तियों में, इस सम्बन्ध में, कोई अन्तर नहीं। अपने व्यक्तिगत जीवन की खुशियों के बीच भी बृहत् संसार के दुःख-कष्ट रसल को स्पष्ट दिखाई देते रहे। उन्होंने दो चीजों के महत्त्व को स्पष्ट रूप से समझा—करुणा की भावना तथा विचार की स्पष्टता। साथ ही उन्हें लगा कि ये दोनों सद्गुण परस्पर निकट भी हैं। अस्पष्ट विचार ही अक्सर क्रूरता का कारण बन जाते हैं, यह उनकी धारणा थी। युद्ध के दिनों में उन्होंने मनुष्य स्वभाव में जो क्रूरता देखी, उसी समय से उनकी यह धारणा बनी।

रसल का दूसरा विवाह ज्यादा समय तक नहीं चला। स्कूल में जिस आदर्श की वे स्थापना करना चाहते थे, वह संभव न हो सकने पर १९३१ में रसल ने उसे छोड़ दिया। डोरा ने १९३८ तक उसे चलाया। दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और रसल ने डोरा तथा बच्चों का आर्थिक उत्तर-दायित्व अपने ऊपर लिया। सन् १९३६ में रसल ने तीसरी बार विवाह सम्बन्ध जोड़ा पेट्रीशिया स्पेन्स नामक एक महिला से। १९३७ में उनकी सबसे छोटी सन्तान कोनरेड का जन्म हुआ। इस घटना से रसल को बहुत सुख मिला। कोनरेड के पैदा होने के कुछ ही समय के बाद रसल को 'टेलीग्राफ हाउस' नामक अपने घर को आर्थिक कारणों से विवश होकर बेचना पड़ा।

सन् १९३८ में पत्नी व तीन बच्चों को लेकर वे घर से निकल पड़े। उसी वर्ष वे अमेरिका गए, जहां शिकागो तथा कैलीफोर्निया में उन्हें अध्यापन-कार्य मिला। उनके दोनों बड़े बच्चे भी गर्मियों की छुट्टियों में अमेरिका आ गए थे। जिस समय यूरोप में द्वितीय महायुद्ध छिड़ा, रसल का पूरा परिवार अमेरिका में था और उनमें से किसी के लिए भी इगलैंड लौटना संभव नहीं था। सन् १९३९ से ४० तक वे अपने पूरे परिवार के साथ अमेरिका में रहे। यद्यपि उनकी रचना 'मैरेज एण्ड मोरल्स' के कारण उनकी लोकप्रियता को जबरदस्त धक्का लगा और उन्हें सार्वजनिक रूप से अनेक अप्रिय आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, परन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन खूब आनन्दपूर्वक बीता। एक वर्ष उन्होंने डा० बर्न्स के फिलाडेल्फिया स्थित बर्न्स फाउण्डेशन के लिए प्रशिक्षण कार्य किया। इसके पूर्व उन्हें अपने विचारों के ही कारण न्यूयार्क में अध्यापन-कार्य मिलते-मिलते रह गया था। रसल उस वक्त डा० बर्न्स के आभारी हुए क्योंकि उस समय उनके लिए इंगलैंड लौट जाना सम्भव नहीं था।

सन् १९४० में रसल कैलीफोर्निया के समीप स्थित ताहो झील के किनारे सपरिवार रहे। इस स्थान की सुन्दरता से उनको अत्यधिक आनन्द प्राप्त हुआ। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति उनकी स्वाभाविक संवेदन-शीलता का परिचय उनकी छोटी-छोटी बातों में प्राप्त होता था। ताहो समुद्र तट से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर एक विशाल झील है। इस झील

के किनारे खड़े होकर जो दृश्य देखने को मिलता है, वह संसार के सुन्दरतम दृश्यों में से एक है। रसल ने अपनी पुस्तक 'इन्क्वाइरी इन्टू मीनिंग एण्ड ट्रुथ' यहीं पर लिखी।

सन् १९४० की शरद् ऋतु में रसल ने हावर्ड में विलियम जेम्स लेक्चर्स दिए और सन् १९४१ से १९४२ तक पुनः बर्न्स फाउण्डेशन में प्रशिक्षण कार्य जारी रखा। वहां पर उनको ५ वर्ष की अवधि के लिए रखा गया था परन्तु सन् १९४२ में ही बर्न्स ने उन्हें छुट्टी दे दी। बाद में रसल ने बर्न्स पर केस किया, जीत भी गए, और उन्हें अच्छी रकम मिली।

इसी बीच उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी' लिख डाली। इसके छपने के पहले तक रसल को यदा-कदा जो प्रशिक्षण कार्य अथवा लेक्चर टूर का अवसर मिलता रहा उसी के सहारे गुजारा करते रहे। कभी-कभी गरीबी बेहद बढ़ जाती परन्तु 'हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी' अमेरिका में 'बेस्ट सेलर' बनी और अनेक वर्षों तक उनको इस पुस्तक के कारण अच्छा धन मिलता रहा। इसके बाद उनको धनाभाव कभी नहीं रहा।

अमेरिका प्रवास के कुछ अन्तिम दिन रसल ने प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय में बिताए। यहां पर उनका आइन्स्टाइन से निकट सम्बन्ध स्थापित हुआ। यहां पर आइन्स्टाइन, गोदेल तथा पोली तीन यहूदी विचारकों से उनका अक्सर वाद-विवाद हो जाता। रसल को लगा कि ये तीनों विचारक जर्मन दर्शन से बेहद प्रभावित हैं, अतः इनके साथ उनके अपने विचार मेल नहीं खाते।

सन् १९४४ में रसल इंगलैंड लौटे तब तक उनका बेटा जान ब्रिटिश नौसेना में भर्ती हो गया था और बेटी कैट रेडक्लिफ कालेज में आत्मनिर्भर होकर रह रही थी। उसे वहां प्रशिक्षण कार्य मिल गया था। उनकी पत्नी तथा कोनरेड को अलग-अलग जहाज से भेजा गया जिसमें उन्हें काफी परेशानी भी उठानी पड़ी। रसल को बहुत-से जहाजों के प्रतिरक्षित समूह के साथ मन्द गति से आगे बढ़ते हुए एक अलग जहाज में जाना पड़ा। उनकी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी' की प्रतिलिपि उनके साथ थी। सेन्सर वालों को पूरी पुस्तक पढ़नी पड़ी। अन्त में यह स्पष्ट

हो गया कि दर्शन के ज्ञान से दुश्मन किसी प्रकार लाभान्वित नहीं हो सकता और इस बात की तसल्ली हो जाने पर ही उनको इंगलैंड लौटने की अनुमति मिली।

इंगलैंड लौटने पर रसेल को ५ वर्ष के लिए ट्रिनिटी कालेज में पढ़ाने का निमंत्रण मिला। बहुत अच्छे कमरे में ठहरने का प्रबन्ध हुआ। कैम्ब्रिज की सुन्दरता की सीमा नहीं। ग्रेट कोर्ट में रहते हुए रसल को बहुत शान्ति का अनुभव होता था परन्तु उनकी पत्नी व छोटा बेटा अच्छी स्थिति में नहीं रह रहे थे।. अन्त में रसल ने एक मकान ले लिया और उसमें कुछ काल तक सपरिवार रहे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ह्यूमन नॉलिज' यहीं पर लिखी। सन् १९४९ में उनकी तृतीय पत्नी पीटर ने उन्हें त्याग दिया और इस प्रकार तीसरी बार उनका विवाह-विच्छेद हो गया।

सन् १९४५ से अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक रसल लगातार परमाणु-युद्ध की संभावना व उसे कम करने के उपाय पर विचार करते, भाषण देते व लिखते रहे। युद्ध के अन्त में इंगलैंड की सरकार ने एक बार रसल को भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। सन् १९५५में सरकार ने उन्हें नार्वे भेजा। रूस के विरुद्ध संगठन में भाग लेने के लिए वहां की सरकार को राजी करने का काम उन्हें दिया था। वहां जाते हुए उनका जहाज दुर्घटना-ग्रस्त हो गया और पानी में जा गिरा। वे तैरते हुए बचाव के लिए लाई गई नाव तक पहुंचे। इस घटना की अखबारों में काफी चर्चा हुई। रसल की यात्रा राजनैतिक दृष्टि से सफल रही।

वे यह मानते थे कि लोगों को युद्ध के बहाने मारना उतना ही गलत है जितना अन्यथा मारना। उन्होंने उन जर्मन लोगों को जिन्होंने (शायद) मजबूरी में यहूदियों के प्रति अपराध किए, समझने का प्रयत्न किया और इंगलैंड के उन लोगों की आलोचना की जो बिना वास्तविकता को जाने उन्हें अपराधी समझते थे। इंगलैंड के वही लोग अपनी सरकार की आज्ञा मानने को शायद उतने ही मजबूर हो सकते थे जितने कि जर्मनी के लोग हिटलर की आज्ञा मानने को।

सन् १९५० में रसल को सरकार द्वारा ओ० एम० पुरस्कार मिला

जो उनसे पूर्व ह्वाइट हेड को मिल चुका था। वे अचानक सरकार की नजरों में ऊपर उठ गए थे। इस सम्मान से वे बहुत प्रसन्न हुए। अपने अंग्रेज होने का उन्हें हमेशा ही अहसास होता रहा। सन् १९५० में वे आस्ट्रेलिया गए और वहां से लौटते हुए सिंगापुर में जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने कहा कि अंग्रेजों को सभ्य तरीके से चुपचाप एशिया से चले जाना चाहिए (जैसे भारत से जा चुके थे) और पंडित नेहरू के नेतृत्व में निरपेक्ष एशियाई ब्लाक का निर्माण होना चाहिए।

उसी वर्ष रसल पुनः अमेरिका गए। वहां वह प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय पहुंचे और मित्र आइन्स्टाइन से पुनः भेंट की। यहीं पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उन्हें नोबेल पुरस्कार के लिए चुन लिया गया है। न्यूयार्क में उनका जो भाषण हुआ, उसमें बहुत भीड़ जमा हो गई थी। रसल को अपनी लोकप्रियता से विस्मय हुआ। उनके भाषण का सारांश यह था कि प्रार्थना से नहीं वरन् प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करके शक्ति का अर्जन किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक तकनीक के प्रयोग से ही ऐसा हो सकता है। वैज्ञानिक प्रसाधनों के दुरुपयोग को रोकना भी उतना ही आवश्यक है। वैज्ञानिक उपकरणों के उचित प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि लोगों के हृदय में करुणा हो और यह इच्छा कि सभी मनुष्य सुखी रहें। आवश्यकता है रचनात्मक प्रवृत्तियों, ज्ञान की वृद्धि, साहस तथा आशावाद की। अमेरिका में लोग, विशेषकर युवा वर्ग अपारम्परिक विचारों का स्वागत करने के लिए उत्सुक थे। धर्म में उन्हें आस्था नहीं रही थी।

सन् १९५० में ही रसल को अपनी पुस्तक 'मैरेज एण्ड मारल्स' पर साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला और उन्हें स्टाकहोम बुलाया गया। उन्हें याद आया कि ठीक ३०० वर्ष पूर्व डेकार्ट को महारानी क्रिस्टीना ने बुलाया था और वे वहां, सर्दी के कारण मर गए थे। परन्तु रसल का अपना अनुभव अच्छा रहा और उन्होंने वहां पर जो भाषण दिया, उसको लोगों तथा वहां के सम्राट् ने पसन्द किया।

सन् १९५० उनके जीवन में बहुत खुशियां लाया। इसी वर्ष उनकी इडिथ फिन्च से पुनः मुलाकात हुई जो बाद में उनकी चौथी व अन्तिम पत्नी बनी। वह ब्रिनमौर कालेज में अध्यापन-कार्य करती थी और लूसी

डोनेली, जिनसे रसल की अच्छी मित्रता थी, की सहेली थी। रसल लूसी के साथ-साथ उनसे भी कई बार मिल चुके थे। सन् १९५० तक लूसी का देहान्त हो चुका था और इडिथ न्यूयार्क आ गई थी। इस मुलाकात के बाद मित्रता इतनी बढ़ गई कि दोनों को ही महसूस हुआ कि वे एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।

इडिथ इंगलैंड आ गई। वे दोनों अक्सर मिलने और रिचमण्ड पार्क में रहते हुए पुरानी यादों में नयापन भरते हुए उन्हें पुनः गरमाने लगे। बीच के भयंकर, विशेषकर दो युद्धों के, वर्षों को वे स्मृति से एकदम लुप्त होता हुआ अनुभव करने लगे। इडिथ ने उनके जीवन में नया जोश भर दिया। उस समय उनकी उम्र ८० वर्ष की थी। इस सन्दर्भ में रसल ने लिखा, "हम दोनों पार्टियों में जाते थे, टहलने निकलते थे, नाटक या संगीत के कार्यक्रम के लिए भी जाया करते थे। हमें एक-दूसरे को जानने में बेहद आनन्द मिलता था। इस पारस्परिक खोज के ज्वलन्त प्रकाश और एक-दूसरे में आनन्दित रहने की भावना से हम ओत-प्रोत थे। एक-दूसरे से प्रेम तो था ही, साथ ही हमारी भावनाएं व रुचियां, लोगों के प्रति मनोभाव सभी लगभग एक-से थे। हमारी भावनाएं पारस्परिक सहानुभूति से परिपूर्ण थीं।"

वे दोनों फाउण्टेन ब्लू, पेरिस तथा ग्रीस साथ-साथ घूमने गए थे और खूब आनन्द लिया था। पेरिस में नदी के किनारे ऊपर-नीचे टहलना, चर्चों में तथा गैलरियों में तथा फूलों व चिड़ियों की दुकानों में जाना, सभी आनन्ददायक अनुभव थे। ग्रीस में रसल खूब घूमे; पर वहाँ उन्हें पारथिनोन या ग्रीक इमारतों को देखकर चैन की वह अनुभूति नहीं मिली जो छोटे-से पुराने ब्रिजनटाइन साम्राज्य के समय बनाए गए एक चर्च में प्राप्त हुई। उस दिन उन्होंने जाना कि नई दुनिया के लोगों से ग्रीक लोग भिन्न हैं—उनके मन में पाप की वह भावना नहीं जो ईसाई मत की खूबी है और यह बात स्वयं अपने अन्दर भी रसल को महसूस हुई, जबकि बौद्धिक रूप से वे उसको नहीं मानते थे।

सन् 1953 में वे इडिथ के साथ स्काटलैण्ड गए। लौटते हुए वे अपने जन्म-स्थान क्लैडोन हाल भी गए जो वे घाटी के ऊपर स्थित

पहाड़ियों में है। रसल वहां पहले सन् 1898 में गए थे। फिर भी, उन्हें वहां की बहुत-सी बातें याद थीं। बाद में रसल, इडिथ तथा रसल के बड़े बेटे व उसका परिवार सब रिचमण्ड पार्क में एक बड़े मकान में रहने लगे थे। वहां रसल कई बार बीमार पड़े। उनका बड़ा बेटा काफी बीमार रहने लगा था और उसके परिवार का भार भी रसल के ऊपर आ पड़ा था। उनकी दूसरी व तीसरी पत्नियां तलाक के बाद उनसे बराबर गुजारे की रकम वसूल करती रहीं। नौबेल पुरस्कार के 11,000 पौंड में से 10,000 तीसरी पत्नी पीटर को वे पहले ही दे चुके थे। उन्हें अपने सबसे छोटे लड़के का खर्च भी उठाना पड़ रहा था। बड़े लड़के ने कई वर्ष तक इन्कम टैक्स नहीं दिया था, उसका भार भी रसल पर ही पड़ा।

सन् 1955 में रसल को पेयर्स इनसाइक्लोपीडिया ने शांति स्थापना के लिए विशिष्ट कार्य करने के लिए पुरस्कृत किया। पुरस्कार में जो कप दिया गया उसमें लिखा था, 'बर्ट्रंड रसल शांतिपथ पर प्रकाश डालते हुए, 1955'। इसी वर्ष रसल ने द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गए यहूदियों की याद में आयोजित एक मीटिंग में भाषण किया। वहां पर शोक संगीत बजाया गया था। सबके हृदय करुणा से भर गए थे। संगीत तथा रसल के भाषण दोनों को रिकार्ड कर लिया गया।

उन्हीं दिनों विश्व संसदीय सरकार संगठन तथा विश्व सांसदों की मीटिंग में रसल को रोम बुलाया गया। सन् १९५९ में पगवाश में विश्व के वैज्ञानिकों की बैठक हुई। उसके बाद रसल ने पगवाश के कई चक्कर लगाए। सन् १९५८ में वे डैन्यूब के किनारे कार से यात्रा करते हुए ड्रन्स्टाइल पहुंचे। उनकी पत्नी उनके साथ थीं। इन जगहों की यात्रा करने की उन्हें बचपन से इच्छा थी। यह यात्रा इतनी सुखद थी कि रसल को लगा कि वे किसी कहानी की पुस्तक में वर्णित यात्रा कर रहे हैं। वहां के लोग सीधे-सादे, दयालु तथा खुशदिल थे। एक नींबू के पेड़ के नीचे, जो बड़ा जादुई था, लोग इतवार के दिन जमा होते थे। वहां बेहद शांति थी।

रसल पगवाश संस्था के चेयरमैन थे। उसकी बैठकें विभिन्न मतों को मानने वाले देशों इंगलैंड, अमेरिका, रूस तथा चीन में हुईं। पहली मीटिंग

बैंक एडिशन में भी छपी थी। इंगलैंड के प्रसिद्ध प्रकाशक एलन एण्ड अनविन ने यह पुस्तक प्रकाशित की। श्रीमान् अनविन की उदारता तथा विचारों की उत्सुकता के लिए रसल प्रथम महायुद्ध के समय ही आभारी थे। इस पुस्तक में सन् १९६२ से १९६३ तक लिखे गए रसल के अनेक कथन, पत्र, भाषण, लेख आदि शामिल हैं। रसल के युवा मित्र राल्फ शूमैन ने वियतनाम जाकर कुछ सामग्री जुटाई थी, वहां की युद्ध-स्थिति के बारे में, भी उन्होंने विवेचन किया। हालांकि इस पुस्तक की कई पत्रिकाओं में खूब आलोचना की गई थी; फिर भी, यह पुस्तक अमेरिका व इंगलैंड में खूब बिकी और कई भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ। रसल ने तथ्यों को जानने के लिए वियतनाम युद्ध के विरुद्ध बोलने वाले तथा उसके पक्ष में बोलने वाले दोनों पक्षों से सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होंने अपराधों पर विचार करने के लिए अदालत की स्थापना का भी प्रयत्न किया। बहुत-से लोगों ने कहा कि रसल सठिया गए हैं। यह भी कहा गया कि उन्होंने अपनी पुस्तक में बिना प्रमाण दिए अनेक बातों को स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

'वियतनाम एकता अभियान' चलाने के कार्य में रसल ने बहुत सक्रिय भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप सन् १९६६ में उन अनेक व्यक्तियों ने मिलकर एकता अभियान की नींव रखी जो वियतनाम की लड़ाई को एक शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा उत्तरी वियतनाम पर अनावश्यक आक्रमण मानते थे। इस अवसर पर उद्घाटन-भाषण रसल ने दिया। इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध अपराध अदालत की स्थापना के पक्ष में अनेक प्रकार से प्रचार किया गया तथा इसके लिए सब ओर से लोग आने लगे। सारे संसार में स्थान-स्थान पर इस अभियान की चर्चा होने लगी तथा बहुत-से लोगों को रसल ने पत्र लिखकर इसके विषय में जानकारी दी और उनसे निवेदन किया कि वे इस अदालत के अंग बन जाएं। उन्हें जो उत्तर मिले, उनसे उनका उत्साह बहुत बढ़ गया था। इन उत्तर भेजने वालों में एक थे ज्यां पाल सार्त्र, जिनके साहस की रसल ने प्रशंसा की है। रसल के प्रयत्नों का नतीजा यह हुआ कि अनेक विचारकों के वियतनाम-युद्ध-विरोधी विचार जन-समुदाय के सम्मुख व्यक्त हो पाए। अन्त में उन्होंने भविष्य

के सम्बन्ध में अपनी भावना को कवि शेली की कविता को उद्धृत करते हुए व्यक्त किया है :

ओह बन्द करो। क्या घृणा और मृत्यु ही लौटेंगे ?
बन्द करो। क्या मनुष्य बस मारेंगे, मरेंगे ?
बन्द करो। आखिरी बूंद तक न करो रिक्त
कटु भविष्यवाणी के पात्र को
ऊब चुका संसार अतीत से
क्या इसे मरना ही होगा
अथवा अन्ततः पाएगा यह विश्राम ?

युद्ध के विध्वंसात्मक स्वरूप, मनुष्य की तरह-तरह की कमजोरियां तथा अनेक व्यक्तिगत दु:खों की अनुभूतियों के बावजूद रसल मनुष्य जाति के लिए एक आदर्श को लेकर जीते रहे और उस पर विश्वास करते रहे। यह आदर्श था सुन्दरता, कोमलता तथा महानता की रक्षा करना, जिससे कठिन से कठिन समय में मनुष्य में समझदारी बनी रहे। वे ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें मनुष्य अधिक स्वतन्त्रता तथा सुख के साथ जी सके। जहां घृणा, ईर्ष्या आदि भावनाएं स्वतः नष्ट हो जाएं क्योंकि उनके लिए कोई स्थान ही न रह जाए।

रसल के पिचानबेवें जन्मदिन पर प्रसिद्ध इतिहास विशेषज्ञ आर्नल्ड टायन्बी ने उन्हें अपनी शुभ कामनाएं देते हुए पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपनी आदर तथा श्रद्धा की भावनाओं को व्यक्त करने के साथ-साथ लिखा था, "मैं आपसे लगभग एक शताब्दी पहले मिला था जब आपने प्लेटो द्वारा मनुष्य जाति से की गई अति मानवीय मांग का प्रत्युत्तर दिया था। तब आप बाहर के प्रकाश को छोड़कर पुनः गुफा के अन्धकार में प्रवेश कर गए थे जिससे कि आप अपने सह-जातीय मानवों की सहायता कर सकें जो अभी तक बन्दी थे। आप तभी जेल से निकलकर आए। सचमुच ही (और यह भी आखिरी बार नहीं) उस पहली बार आप जेल में इसलिए भेजे गए थे कि आपने सार्वजनिक स्थानों में, सेना में, बलात् भर्ती के विरुद्ध आवाज उठाई थी। आपके लिए सम्भव था कि आप रचनात्मक

बौद्धिक कार्यों में ही पूर्णतः लगे रहते। इस क्षेत्र में पहले ही आपकी अनेक महान् उपलब्धियां थीं, और हम जानते हैं कि इस प्रकार के कार्य में आपको असीम बौद्धिक आनन्द मिलता है। इससे मनुष्य जाति को भी लाभ है क्योंकि इससे हमारी, अपने उस अजनबी जगत् के सम्बन्ध में, ज्ञान व समझ-बूझ में वृद्धि होती है जिसमें कि हम अपने को पाते हैं। आप चाहते तो खूब चैन से रह सकते थे और एकमत होकर सब पण्डित लोग आपकी सराहना ही करते। वैसे भी आप इस क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करते ही रहे हैं, परन्तु आप अपने सह-मानवों की इतनी अधिक परवाह करते हैं कि केवल बौद्धिक जीवन से, यद्यपि वह भी उज्ज्वल है, आप सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे। आपमें ऐसी आत्मिक महानता थी कि झगड़े के ऊपर रहने के आप इच्छुक नहीं रहे। तभी से आप सभ्यता को जीवित रखने तथा हाल में अणु बम बन जाने के बाद मानव जाति को जीवित रखने के प्रयास में प्रयत्नशील हैं। मैं आपके प्रति सबसे अधिक आभारी इसलिए हूं कि आप क्रमशः तीन पीढ़ियों के अपने से छोटे समकालीन लोगों को आशा व उत्साह प्रदान करते आए हैं और अभी भी उतनी ही शक्ति तथा निर्भीकता प्रदान कर रहे हैं'''इसीलिए बृहस्पतिवार १८ मई, १९६७ आपके करोड़ों समकालीन लोगों के लिए, जो कि इस सम्बन्ध में अनभिज्ञ हैं तथा उन हजारों लोगों के लिए, जो जानते हैं कि आपका क्या मत है और आपने क्या प्रयत्न किए, एक ऐतिहासिक तिथि है। आपने अपने को अपने से परे प्रक्षेपित कर दिया है—उस अद्भुत प्राणी के इतिहास में, जिसके कि आप असाधारण प्रतिनिधि हैं।"

फरवरी, १९७० में जब रसल का देहान्त हुआ तब संसार के शांति, सौन्दर्य तथा साहित्य-प्रेमियों व बौद्धिक प्राणियों ने क्या खोया यह बात श्री टायन्बी के उक्त पत्र को पढ़कर स्पष्ट हो जाती है। परन्तु रसल इतनी आसानी से मरने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनके कार्यों का महत्त्व दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। उनके दर्शन के मूल प्रश्न अभी तक अनुत्तरित हैं। इन्हीं में उनका जीवन था और इन्हीं में वह जीवन आज भी मौजूद है।

प्रेम, विवाह, सामाजिक संस्थाएं तथा नीति

दर्शन, गणितशास्त्र तथा विज्ञान के गूढ़तम प्रश्नों के सन्दर्भ में विभिन्न विचारधाराओं का विवेचन तथा इन क्षेत्रों में अपने चिन्तन को सतत परिष्कृत करते रहने के साथ-साथ रसल मनुष्य-जीवन की व्यावहारिक, सामाजिक, नैतिक व धार्मिक समस्याओं के प्रति भी सदा जागरूक रहे और उनके समाधान पर सक्रिय रूप से चिंतन करते रहे। अपने समकालीन युग की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण समस्या तथा संस्था पर रसल ने एक उदार विचारक, प्रबुद्ध दार्शनिक तथा विज्ञान-प्रेमी व्यक्ति के रूप में विचार किया। उनकी जीवन-दृष्टि के व्यापक तथा रुचियों के बहुमुखी होने का एक कारण यह भी था कि मानव जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों का अध्ययन व मनन उन्होंने ज्ञान की खोज के अभिन्न पहलू के रूप में किया। विज्ञान की नई-नई खोजों तथा उपलब्धियों, उनके नैतिक व सामाजिक परिणामों, व्यावहारिक जीवन पर उनके विभिन्न प्रभावों के विषय में उनका चिंतन जीवन-पर्यन्त सहज भाव से चलता रहा। इस प्रकार प्रत्येक बौद्धिक तथा व्यावहारिक समस्या को लेकर रूढ़ि-मुक्त भाव से विचार करने तथा उन विचारों को सहज लेखन-शैली में व्यक्त करने की उनमें विलक्षण क्षमता आ गई।

सतत परिश्रम तथा आत्म-सुधार के फलस्वरूप ही रसल की लेखन-शैली तथा भाषा इतनी सहज तथा विचार इतने स्पष्ट हो सके कि दर्शन के कठिन प्रश्नों को बौद्धिक व्याख्या के उच्चतम स्तर पर (जटिलताओं की उपेक्षा किए बिना) प्रस्तुत करते हुए भी उन्होंने दुरूह शब्दावली अथवा अस्पष्ट प्रत्ययों का प्रयोग नहीं किया। अपने शब्दों को पारदर्शी

बनाकर विचारों का सहज वाहक बनाने में उन्हें कभी कठिनाई नहीं हुई। दुरूहता का अभाव, केवल भाषा के स्तर पर ही नहीं वरन् विचार के उस स्तर पर, जहां भाषा एवं विचार एक हो जाते हैं, रसल की शैली की विशेषता है। रसल की भाषा व विचार इस सीमा तक एक-दूसरे में सन्निहित हैं कि उन्हें परस्पर पृथक् करना सम्भव नहीं।

रसल को 'औक्कम के रेज़र' के प्रयोग के लिए ही नहीं, उसका परिचय दूसरे विचारकों को देने के लिए भी जाना जाता है। विलियम औक्कम मध्ययुगीन दार्शनिक विचारक थे जिनके नाम पर 'औक्कम का रेज़र' प्रसिद्ध हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार किसी भी व्याख्या को प्रस्तुत करते हुए मूल अवधारणाओं अथवा पदार्थों की संख्या को कम से कम रखना चाहिए। अर्थात् जो काम 'कम' से हो सकता है, उसे अधिक से करना व्यर्थ है। भाषा के प्रयोग में इस सिद्धान्त का पालन करते हुए रसल ने यह बात स्पष्ट कर दी कि कम शब्दों में जो कुछ व्यक्त किया या बताया जा सकता है, उसे लम्बे-चौड़े शब्द-जाल में लपेटकर प्रस्तुत करने से जटिल समस्याएं और भी अधिक जटिल प्रतीत होती हैं अथवा समझ के बाहर हो जाती हैं। किसी भी प्रबुद्ध तथा परिश्रमी विद्यार्थी की समझ के दायरे में आने वाले विषय को वह इस प्रकार की सहज भाषा में प्रस्तुत करते थे कि विद्यार्थी अपना ध्यान विषय-वस्तु पर लगा सके।

रसल की पुस्तक 'माई फिलासफिकल डेवलपमेंट' के परिशिष्ट में एलन वुड लिखते हैं कि 'औक्कम का रेज़र' रसल के लिए दार्शनिक लाघव का प्रयत्न अथवा साधन मात्र नहीं वरन् अपने-आप में एक उद्देश्य था। इसका उनके लिए उतना ही महत्त्व था जितना निरपेक्ष सत्य का। एलन वुड के अनुसार रसल एक ऐसे दार्शनिक हैं जिसका कोई दर्शन नहीं अथवा जिसने सभी दर्शनों को माना। यह कथन कुछ सीमा तक सत्य भी है क्योंकि रसल अपने विकास के विभिन्न कालों में विभिन्न मान्यताओं से प्रभावित हुए। अतः सभी महत्त्वपूर्ण दर्शन रसल की रचनाओं में अभिव्यक्त हुए, समय-समय पर विभिन्न विचारों को आत्मसात् करते हुए और अपनी ही पूर्व मान्यताओं की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए, वे अपने विचारों में परिवर्तन आता हुआ देखते थे परन्तु इस बात से कभी

विचलित नहीं होते थे। इतनी बार अपने विचारों में परिवर्तन आता देख उन्हें यह चिंता भी कभी नहीं हुई कि उनके समकालीन बुद्धिजीवी अथवा अन्य पाठक उनके विषय में क्या धारणा बनाएंगे।

विज्ञान के आदर्श रसल के अपने आदर्श थे। इस क्षेत्र में 'औक्कम के रेज़र' का प्रयोग कम से कम अवधारणाओं के आधार पर अधिक से अधिक तथ्यों तथा घटनाओं की व्याख्या करने के प्रयत्न के रूप में किया जाता है। यह किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त का ऐसा गुण है जिसके आधार पर उसे अन्य वैज्ञानिक सिद्धांतों से श्रेष्ठ माना जाता है।

रसल ने मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में भी अपनी मूल विचार-पद्धति का परिचय दिया है। विज्ञान से प्राप्त ज्ञान, जीवन के अनुभव तथा बुद्धि इन सबमें रसल को सहज आस्था थी। जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के संदर्भ में भी वे इन सबका उपयोग करते हैं। उनके निष्कर्ष व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी होते हुए भी हर प्रकार के नैतिक दबाव से हमें मुक्त रखते हैं। उनकी दो कृतियां 'मैरेज एण्ड मोरल्स' तथा 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' उनके आशावादी चिनन तथा व्यावहारिक सुझावों के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। 'मैरेज एण्ड मोरल्स' बहुचर्चित इसलिए भी हुई क्योंकि कई नैतिकतावादी व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने इस पुस्तक को आमतौर पर पाई जाने वाली धार्मिक व नैतिक रूढ़ियों व धारणाओं के विरुद्ध पाया।

'मैरेज एण्ड मोरल्स' १९२९ तथा 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' १९३० में प्रकाशित हुईं। दार्शनिक क्षेत्र में इनका रसल की विख्यात रचनाओं में कोई विशेष स्थान नहीं माना जाता परन्तु जन-साधारण की दृष्टि से ये रचनाएं महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण सामाजिक, नैतिक तथा मनो-वैज्ञानिक समस्याओं को व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से समझने तथा उनसे कुछ सीखने का प्रयत्न किया गया है। जीव विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि वैज्ञानिक विषयों के ज्ञान के अरिरिक्त यात्रा तथा जीवन के अन्य अनुभवों से प्राप्त जानकारी के आधार पर एक समन्वित दृष्टिकोण, जिसे अंग्रेजी में 'एन्लाइटिंड कामनसेन्स' कहा जा सकता है, इन दोनों पुस्तकों में प्राप्त निष्कर्षों तथा सुझावों का आधार है।

धारणा की दृष्टि की है कि नारी-मुक्ति-आन्दोलन उस लोगों के कारण ही सम्भव हो पाया है जो ईसाई मत की नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार ही नहीं करते वरन् उसकी कड़ी निन्दा भी करते हैं। ईसाई मत में रसल ने गुणों के अनुपात में अवगुण अधिक पाए। इस मत की आलोचना करते हुए उन्होंने स्वयं ईसा मसीह को ही नहीं छोड़ा। वे हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर खींचते हैं कि अहिंसा का पाठ ईसा से बहुत पहले बुद्ध तथा लाउत्से ने पढ़ाया था और मानते हैं कि यह कहना 'कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसकी तरफ कर दो' कोई नई बात नहीं है। अपने जीवन में रसल ने कई बार देखा कि कई कट्टर ईसाई ऐसे भी हैं जो ईसा की शिक्षा को नहीं मानते। ईसा ने कहा था दूसरों पर (नैतिक) निर्णय मत दो कहीं कोई तुम पर (नैतिक) निर्णय न दे डाले। परन्तु रसल ने ऐसे अनेक उदाहरण पाए जिनमें भले ईसाई लोगों को उन्होंने दूसरे लोगों के ऊपर निर्णय देते हुए पाया और इतना ही नहीं, कभी-कभी तो इन निर्णयों के परिणामस्वरूप लोगों को दंडित भी किया गया। ईसाई धर्म में पाई गई ऐसी भयंकर कल्पना, जिसमें पड़कर मनुष्य अनन्तकाल तक दहकता रहता है, रसल को बेहद अमानवीय लगी।

ईसा की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि अनन्तकाल तक चलने वाले दण्ड में विश्वास करने वाला व्यक्ति वही हो सकता है जिसमें मानवता की गहरी भावना का अभाव हो। रसल ईसा को एक साधारण मनुष्य के रूप में देखते हैं और सुकरात से उसकी तुलना करते हुए कहते हैं कि सुकरात ने उन सभी व्यक्तियों को जिन्होंने उन्हें दण्ड दिया तथा जो उनके मत से असहमत थे, क्षमा कर दिया था! ईसा तथा सुकरात के बीच ऐसे तुलना रसल जैसे दार्शनिक ही कर सकते हैं, ईसा को धर्म की दृष्टि से देखने वाले व्यक्ति कभी नहीं।

रसल का अपना अनुभव था कि ज्ञान तथा सद्गुण दोनों ही दृष्टियों से जो बुरे लोग थे, अधिकांशत: वही ईसाई मत को मानने वाले निकले। इसके अतिरिक्त, इतिहास के अध्ययन से, उनके इस मत की पुष्टि हुई कि जिस काल में धार्मिक रूढ़िगत विश्वास जितने गहरे पाए गए, उस काल में उतनी ही क्रूरता तथा अन्य बुराइयां भी पाई गईं। रसल को लगा कि

यह बात विचित्र होते हुए भी सत्य है। इस संदर्भ में वे ईसाई धर्म के उस काल का उल्लेख करते हैं जब धर्म में लोगों की आस्था बढ़ गई थी तथा कट्टरता की चरमसीमा पर पहुंच चुकी थी। इस काल में मंत्रणा भी भयंकर रूप से दी जाती थी तथा लाखों स्त्रियों को चुड़ैल समझकर जला दिया जाता था।

अपने अनुभव तथा अध्ययन दोनों ही के आधार पर रसल इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि संसार में मनुष्य की भावनाओं के क्षेत्र में या अपराध-सम्बन्धी कानून को लेकर जो उन्नति हुई, अथवा युद्धों को कम करने के प्रयत्न किए गये या काले (नीग्रो) लोगों के प्रति उचित व्यवहार की मांग की गई और दासता की संख्या के विरुद्ध कदम उठाए गये, उन सब का गिरजाघरों ने विरोध किया। उनको यही लगता रहा कि संसार में होने वाली प्रत्येक नैतिक उन्नति का चर्च ने विरोध किया। रसल के समय में तलाक-संबंधी कैथोलिक विधान बहुत कट्टर था। इस संदर्भ में रसल एक काल्पनिक स्थिति को लेकर कहते हैं कि यदि किसी स्त्री का विवाह सिफलिस के मरीज (आजकल इस बीमारी का इलाज आसानी से हो जाता है परन्तु रसल के समय में नहीं था) से हो जाए तो भी धर्म उसे तलाक की अनुमति नहीं देता और स्वयं भी उस बीमारी का शिकार बनने, अथवा ऐसे बच्चों को जो सम्भवतः इस बीमारी से ग्रस्त हो जाएं, जन्म देने से इन्कार करने का अधिकार उस स्त्री को प्राप्त नहीं होता। धर्म द्वारा लगाये गए इस प्रकार के प्रतिबन्ध कितने क्रूर हैं, यह बात वे अपने पाठकों के मन में अच्छी तरह बैठा देना चाहते थे।

रसल भय को धर्म का मूलाधार मानते हैं और उनके विश्लेषण के अनुमार भय ही क्रूरता तथा करुणाहीनता की भावना को जन्म देता है। इसीलिए धर्म तथा क्रूरता साथ-साथ पाये गए हैं। इस बात के उदाहरण ईसाई धर्म में तो पाए ही गए हैं, दूसरे धर्मों में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

भय के साथ चलने वाली एक और भावना है जो कि शायद भय को गहराई दे डालती है, वह है पाप की भावना। अपनी पुस्तक 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में रसल ने बार-बार यह बात उठाई है कि नारी-पुरुष के स्वस्थ

नैसर्गिक सम्बन्धों, प्रेम, विवाह तथा पारिवारिक जीवन सभी को पाप अथवा अपराध की भावना, विषाक्त बना देती है, अतः जिस धर्म की मान्यताएँ इस भावना को जन्म देती हैं वह मानवता के विकास के लिए हानिकारक है।

रसल के अनुसार ईसाई धर्म ने विवाह को परिवार के लिए माना न कि परिवार को विवाह के लिए। इस सन्दर्भ में सेण्ट पाल के विचारों का विवरण देते हुए 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में वे लिखते हैं, "सेण्ट पाल ने विवाह के विषय में बिल्कुल नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार विवाह मुख्यत: बच्चों को जन्म देने के लिए नहीं, वरन् व्यभिचार के पाप से बचने के लिए होता है।"

रसल ने पाया कि ईसाई धर्म काम-वासना की तृप्ति को—चाहे वह विवाह की सीमा के अन्तर्गत ही क्यों न हो—बुरा ही समझता रहा। इस सम्बन्ध में प्रोटेस्टैण्ट चर्च को उन्होंने कैथोलिक चर्च से कहीं अधिक कट्टर पाया। कैथालिक सैद्धान्तिक रूप से अधिक कट्टर होते हुए भी व्यावहारिक क्षेत्र में उतने कट्टर नहीं। उनकी अपेक्षा प्रोटेस्टैण्ट लोग व्यभिचार को अधिक कड़े शब्दों में भर्त्सना करते पाए जाते हैं। शायद कैथोलिक धर्म में 'कनफेशन' द्वारा पाप-मुक्ति का व्यावहारिक मार्ग संभव हो जाने के कारण ऐसा हुआ।

पाश्चात्य सभ्यता में नारी को नीचा स्थान दिया गया है। इसके कारणों में ईसाई धर्म को ही रसल ने प्रमुख रूप से लिया है। धर्म के कारण ही स्त्रियों को 'नरक का द्वार' और 'पुरुषों को धर्मच्युत करने वाली मायाविनी' के रूप में देखा गया। 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में रसल ने उन आदिकालीन धर्मों के विषय में लिखा है जिन्हें ईसाई लोग 'पेगन' कहते हैं तथा निम्न वर्ग का धर्म मानते हैं। उन्होंने इन धर्मों में यौन संबंधों के प्रति अधिक स्वाभाविक तथा स्वस्थ मनोभाव पाये। लिंग-पूजा तथा उर्वरता की पूजा इन धर्मों में व्यापक रूप से प्रचलित है। काम-वासना की पूर्ति तथा उर्वरता के सम्बन्ध को सहज मानकर, इन्हें प्रोत्साहित करने के लिए, तरह-तरह के उत्सव मनाये जाते रहे। उर्वरता कृषि के क्षत्र में हो अथवा पशु या मनुष्य जीवन में, पूजनीय तथा सराहनीय मानी

गई। इस संदर्भ में रसल ने पुराने यूनान व मिस्र में पाई जाने वाली लिंग-पूजा तथा उर्वरता से जुड़े उत्सवों का विवरण तो दिया है परन्तु भारत का नाम कहीं पर नहीं आया है। शायद रसल को भारत के विषय में अधिक जानकारी नहीं थी।

रसल ने बौद्ध धर्म की ईसाई धर्म से तुलना की और पाया कि आत्म-संयम तथा काम-वासना के दमन पर जोर देने के कारण दोनों धर्म कुछ सीमा तक समान हैं। हिन्दू धर्म के विषय में रसल का क्या मत हो सकता था, यह कहना कठिन नहीं। जहां तक अन्ध-विश्वास, जाति-भेद, नारी के सतीत्व की महिमा, पति परमेश्वर का आदर्श आदि हिन्दू धर्म से जुड़े हैं, रसल अवश्य ही इन सबको त्याज्य मानते हैं; परन्तु शायद जीवन में आशा तथा उत्साह लाने वाले त्यौहारों, उत्सवों तथा संस्कारों को तथा गीता के उदार दृष्टिकोण को वह नकारात्मक नहीं कह पाते।

ऐसा लगता है कि रसल को 'पेगन' कहलाने वाले धर्म से उतनी शिकायत नहीं, जितनी ईसाई धर्म से। यदि 'पेगन' धर्म से ईसाई वर्ग ने कुछ सीख ली होती तो उसका स्वरूप कुछ और ही होता; और शायद उस रूप में वह रसल को अधिक ग्राह्य लगता। परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं था। इसके विपरीत ईसाई धर्म लगातार 'पेगन' धर्म के विरुद्ध अभियान चलाता रहा। मध्य युग के अन्त तक अनेक पेगन अवधारणाओं का यूरोप से अन्त हुआ।

धर्म के रक्षक, जो काम-वासना की पूर्ति के विरुद्ध अभियान चलाना ही अपना मुख्य उद्देश्य समझते हैं, वास्तव में ईर्ष्या तथा कामुकताजनित थकावट से परेशान रहते हैं। रसल की यह विवेचना मनुष्य की मनोवृत्तियों के अध्ययन पर आधारित है। ये मनोवृत्तियां परिवर्तनशील हैं। रसल के अनुसार ईर्ष्या की उपस्थिति में कामेच्छा घृणा की भावना को जन्म देती है। इस व्याख्या के अनुसार, धार्मिक व्यक्ति अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण अपने ऊपर संयम रखने को बाध्य होते हैं। परन्तु यह संयम उनकी स्वाभाविक इच्छाओं के प्रतिकूल होता है। एक ओर तप और संयम तथा दूसरी ओर व्यभिचार की ओर झुकाव। दोनों विरोधी भाव एक साथ उपस्थित होने के कारण मनुष्य के मन में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न

कर देते हैं। जो कुछ वह अपने जीवन में त्याग चुका है, और जिसे बुरा समझता है, उसके प्रति अपने झुकाव को वह स्वीकार नहीं कर सकता, अतः उसके प्रति उसके अन्दर ईर्ष्या के भाव घृणा का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार व्यभिचार तथा तप व संयम परस्पर निकट आ जाते हैं। कुछ लोग अपने धर्म के अभाव के कारण वास्तव में यह मान लेते हैं कि उनका विवाह किसी देवता से (या भगवान से) हो चुका है। ऐसे लोग तो इस आस्था के कारण अपनी वासनाओं को संयमित करने में सफल हो जाते हैं, परन्तु अनेक लोग अनावश्यक कुंठाओं के शिकार बन जाते हैं। रसल की इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने ईसाई धर्म को कुंठित तथा पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की धार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा।

उन्होंने देखा कि किसी काल में हम मनुष्य जाति को सुख व आनन्द से परिपूर्ण पाते हैं और किसी काल में ठीक इसके विपरीत। इसका क्या कारण है ? इस प्रश्न का उत्तर कुछ हद तक वे दे पाये परन्तु पूर्णतः नहीं। रसल स्वयं भी अनुभव करते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर इसना सरल नहीं। शायद धर्म-सम्बन्धी प्रश्न भी कुछ सीमा तक इसी प्रकार के होते हैं। बुद्ध के जीवन में व्यक्तिगत स्तर पर कोई कुंठा नहीं पाई गई; फिर, किस कारणवश उन्होंने संसार का परित्याग कर संन्यासी का जीवन अपनाया ? इस प्रश्न का उत्तर केवल सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्तर पर सम्भव नहीं। रसल की व्याख्या आम आदमी पर ठीक लागू हो सकती है परन्तु ईसा अथवा बुद्ध के जीवन की पूर्ण व्याख्या करना इतना सरल नहीं। इसके अतिरिक्त किसी भी धर्म की समस्त मान्यताएं उस धर्म के प्रथम प्रवक्ता के कारण नहीं होतीं। स्वयं रसल ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि ईसाई धर्म को मानने वाले कट्टर लोगों में ईसा के द्वारा सिखाये गए दया, करुणा तथा क्षमा आदि के सद्गुणों का अभाव पाया जाता है।

विवाह, परिवार तथा प्रेम

विवाह की संस्था को रसल ने तीन बातों पर आधारित माना—मूल प्रवृत्ति, जीवन का आर्थिक पहलू तथा धार्मिक दृष्टि। वे यह मानते हैं कि अनेक धर्म मूल प्रवृत्तियों का आधार लेकर चले और इस प्रकार के धर्म अधिक शक्तिशाली रहे। लेकिन उन्होंने देखा कि ऐसे उदाहरण अधिक हैं जहां धर्म के नाम पर ईर्ष्या की भावना को प्रोत्साहन तथा प्रेम की भावना को मात्र सहिष्णुता प्राप्त हुई। वे कहते हैं कि विवाह की संस्था में भी मूल प्रवृत्ति का तत्त्व उतना नहीं है जितना लोग समझते हैं। इस बात के पक्ष में 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में उन्होंने ऐसे समाज के उदाहरण दिए जहां पाश्चात्य सभ्य समाज की नैतिकता से भिन्न मूल्य पाये गए। कुछ ऐसे समाज रहे हैं जहां घर की कुंवारी लड़की का कौमार्य किसी पुजारी को अर्पित किया जाता था। कहीं-कहीं ऐसी मान्यता भी रही है कि घर में आए अतिथि का पूर्णतः आतिथ्य तभी हो सकता है यदि घर का स्वामी अपनी पत्नी को उसकी सेवा में प्रस्तुत करे। बहु-विवाह की प्रथा भी कई देशों में पाई गई है। रसल का तर्क यह है कि यदि विवाह मूल प्रवृत्तियों के ऊपर पूर्णतः आधारित होता तो उसके इतने विभिन्न स्वरूप न होते।

आधुनिक काल में सभ्य समाज में पितृप्रधान परिवारों का चलन है। रसल मानते हैं कि वैवाहिक जीवन में स्त्रियों के सद्गुणों पर जोर देने का मुख्य कारण है इस संस्था को बनाये रखने का प्रयत्न। वे कहते हैं कि बच्चे तथा पिता का सम्बन्ध परोक्ष तथा अनुमानित होता है और पत्नी के सतीत्व तथा सद्गुणों पर आधारित। अतः पितृत्व की रक्षा के लिए पत्नी का धर्मपरायण होना आवश्यक है। बच्चा (यदि अपना हो तो) पिता के अहं को सन्तुष्ट करता है। ऐसे पुरुष भी, जो अपनी पत्नी की उपेक्षा करते रहते हैं, तथा अपना अधिकांश समय किसी प्रेमिका के साथ व्यतीत करते हैं, यदि अपनी पत्नी को किसी पर-पुरुष के साथ प्रेम करते हुए पाएं तो उनकी ईर्ष्या का ठिकाना नहीं रहता। यही पुरुष शायद अपनी प्रेमिका को किसी अन्य पुरुष के साथ प्रेम करते हुए देखकर उतने विचलित न हों।

इस प्रकार रसल पितृ-प्रधान समाज में विवाह संस्था की नैतिक मान्यताओं का विवेचन करते हुए मानते हैं कि पितृत्व का अस्तित्व व महत्त्व ही पुरुषों के अन्दर नारी में सतीत्व की मांग का कारण बन गया है। विवाह के समय लड़की कुंवारी हो, इस मांग के पीछे भी यही कारण है।

रसल के अनुसार विवाह रूमानी प्रेम पर आधारित नहीं होता। वह इस बात से भी सहमत नहीं हैं कि रूमानी प्रेम का आदर्श ही नारी-पुरुष के सम्बन्धों का मूलाधार होना चाहिए। सुखी विवाह का आधार वे रूमानी प्रेम को नहीं, वरन् उससे कहीं अधिक गम्भीर सम्बन्ध को मानते हैं। विवाह का आधार वे ऐसे प्रेम को मानते हैं जो यथार्थ पर टिका हुआ हो और परस्पर अनुभव की गई निकटता से उत्पन्न स्नेह व सहानुभूति पर आधारित हो।

'मैरेज एण्ड मोरल्स' में रसल ने रूमानी प्रेम व विवाह के विषय पर सविस्तार लिखा है। यूरोप में मध्ययुगीन नैतिकता ने रूमानी प्रेम को जन्म दिया। रसल के अनुसार रूमानी प्रेम की विशेषता यह है कि प्रेमी को अपना प्रेम-पात्र अतिशय बहुमूल्य तो लगता ही है साथ ही उसको पाना नितान्त दुसाध्य। परिणामस्वरूप कल्पना के स्तर पर प्रेमी अपनी प्रेमिका को अनेक गुणों तथा आकर्षणों से परिपूर्ण पाता है और अपनी भावना को यथार्थ के स्तर पर व्यक्त न कर पाने के फलस्वरूप कला, कविता तथा साहित्य द्वारा व्यक्त करना चाहता है। वे यह मानते हैं कि रूमानी प्रेम का आदर्श कला व साहित्य के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। कवि दांते का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि बियेट्रश के प्रति दांते का प्रेम दैहिक अथवा काम-वासना युक्त नहीं वरन् आध्यात्मिक तथा काव्यात्मक था। इस तरह के प्रेम को हर प्रकार से सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का आधार बनाकर दैहिक व सांसारिक स्तर से ऊपर उठा दिया गया। इसकी अभिव्यक्ति कल्पना के माध्यम से कविता तथा अन्य कलात्मक व साहित्यिक रचनाओं में होती रही। इंगलैंड में कवि शेली की रचनाओं में रसल ने रूमानी प्रेम का परिष्कृत रूप देखा। परम्परागत मूल्यों द्वारा प्रस्तुत बाधाओं तथा संवेदनात्मक स्तर पर भावनाओं की प्रचुरता के, अथवा यों कहें कि परम्परा तथा स्वतंत्रता के सन्तुलन को ही

वे रूमानी प्रेम का आधार मानते हैं। प्रेम-गीतों के ही नहीं, वरन् जीवन के सर्वाधिक सघन आनन्द के स्रोत के रूप में उन्होंने रूमानी प्रेम के महत्त्व को माना। उन्होंने 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में लिखा, "ऐसे नारी व पुरुष के सम्बन्ध में, जो एक-दूसरे को उत्कंठित भाव से, कल्पना तथा कोमलता सहित प्रेम करते है, ऐसा कुछ होता है, जिसका मूल्य निर्धारित करना कठिन है।"

यह स्पष्ट है कि रसल विवाह को एक ठोस, व्यावहारिक आधार देने के पक्ष में थे। इसीलिए रूमानी प्रेम को अनेक रूपों में सराहते हुए भी उसे विवाह का आधार मानना उन्हें उचित नहीं लगा। सुखी वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के बीच जो निकटता स्थापित हो जाती है, उसका पारिवारिक जीवन की सफलता से गहरा सम्बन्ध होता है। इस बात को रसल ने अनेक प्रकार से कहने का प्रयत्न किया है। 'मैरिज एण्ड मोरल्स' तथा 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' दोनों कृतियों में उन्होंने मानव जीवन में पारिवारिक सुख तथा सन्तान सुख के महत्त्व पर विचार किया। विवाह की सफलता पारिवारिक सुख तथा सन्तान के लालन-पालन के उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई होती है। विवाह के सन्दर्भ में वे कहते हैं कि बच्चों को जन्म देना तथा उनके उचित विकास के साधनों को उपलब्ध कराना, मनुष्य का कर्त्तव्य मात्र नहीं, वरन् एक ऐसा उद्देश्य है जो जीवन में नई स्फूर्ति तथा आनन्द उत्पन्न कर देता है। इसके अतिरिक्त परिवार की भावना मनुष्य को अकेलेपन से भी मुक्त रखती है।

'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' में रसल ने एक स्थान पर लिखा है, "इस संसार में सुखी रहने के लिए, विशेषकर जब युवावस्था समाप्त हो चुकी हो, यह अनुभव करना आवश्यक हो जाता है कि हम निपट अकेले व्यक्ति नहीं, जिसके दिन शीघ्र समाप्त हो जाएंगे, वरन् एक ऐसी जीवन-सरिता का अंग हैं, जो प्रथम बिन्दु से चलकर एक अज्ञात व दूरवर्ती भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।" वे मानते हैं कि यह भावना सभ्य लोगों में कम होती जाती है, पर वास्तव में यह एक नैसर्गिक संवेग है जो शायद स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख कम हो जाता है।

कुछ भी हो, पारिवारिक प्रेम जीवन की मूल आवश्यकताओं की

पूर्ति करता है। एक और गुण जो पारिवारिक प्रेम में रसल ने पाया, वह है भरोसे की भावना। 'कानक्वेस्ट ऑफ हैपिनेस' में रसल कहते हैं, "हमारे मित्र हमारे गुणों तथा प्रेमी हमारे आकर्षण के कारण हमें पसन्द करते हैं। गुणों अथवा आकर्षण में कमी आ जाने पर मित्र तथा प्रेमी विलुप्त हो सकते हैं, जबकि विपत्ति के समय सबसे अधिक भरोसेमन्द माता-पिता ही होते हैं।"

पितृत्व तथा मातृत्व की भावना में प्रेम तथा अधिकार का समन्वय रहता है। रसल कहते हैं कि जहा एक ओर बच्चे को परिवार में सुरक्षा का अनुभव होता है, वहीं माता-पिता के मन में बच्चे के प्रति प्रेम की भावना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संतोष प्रदान करती है। यही नहीं, उनके अनुसार संतान-सुख ही सबसे अधिक स्थायी होता है और नारी ही नहीं, पुरुष के जीवन में भी संतान का सुख बहुत महत्त्व रखता है। स्वयं अपने जीवन में भी उन्होंने इस बात को सत्य पाया।

परिवार की संस्था किस प्रकार स्थापित हुई और धीरे-धीरे इसमें क्या परिवर्तन हुए यह प्रश्न रसल ने 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में उठाया। वे मानते हैं कि प्रकृतितः पुरुष अपनी प्रेमिका के बच्चे से प्रेम इसलिए करता है कि उसने उसे जन्म देते हुए देखा तथा वह बच्चे की मां से प्रेम करता है। वह स्वयं बच्चे का जन्मदाता है यह ज्ञान यह नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि किसी बच्चे को प्यार करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपना बच्चा हो। किसी भी बच्चे के प्रति, जिसे किसी ने पाला-पोसा हो, यह प्रेम हो सकता है। मालिनोवस्की नामक लेखक ने ट्रोब्रिएण्ड द्वीपों के निवासियों में पितृत्व क्या है, इस ज्ञान का अभाव पाया; परन्तु वहां पर पुरुष अपनी पत्नी या प्रेमिका के बच्चे को प्यार करते हैं। यदि कोई पुरुष बच्चे के जन्म काल में पत्नी के निकट रहे तो उसके मन में बच्चे के लिए प्रेम हो जाता है। मालिनोवस्की की खोज के आधार पर रसल ने यह निष्कर्ष निकाला कि पुरुष एकदम भिन्न कारणों से किसी बच्चे के प्रति प्रेम-भाव का अनुभव कर सकते हैं—एक इसलिए कि वह उसकी अपनी सन्तान है, दूसरा इसलिए कि वह उसकी पत्नी की सन्तान है।

सभ्यता के विकास के साथ तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण विशेषकर कृषिप्रधान लोगों में यह आवश्यक हो गया कि श्रमिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए बेटे अपने पिता की सहायता करें। रसल के अनुसार इस परिस्थिति के कारण परिवार की संस्था को नैतिक व धार्मिक आधार दे दिया गया। कृषिप्रधान क्षेत्रों में पारिवारिक जीवन का महत्त्व आज भी देखने को मिलता है। परन्तु यूरोप में तथा संसार के अन्य भागों में औद्योगीकरण के आने के साथ-साथ परिवार का महत्त्व कम होने लगा। रसल कहते हैं कि धीरे-धीरे इन्सान माता-पिता की जीविका का साधन नहीं वरन् उस पर एक बोझ बन गई और इसी दौरान यूरोप में जनसंख्या को कम करने का अभियान चल पड़ा।

आधुनिक काल में पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन आ गये हैं। इंगलैंड का उदाहरण देते हुए रसल बताते हैं कि किस प्रकार धीरे-धीरे राज्य को बच्चे के जीवन में हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त होता गया। किसी गरीब के बच्चे को, जिसे उसके माता-पिता पढ़ा नहीं सकते, राज्य किसी शिक्षा संस्था में भेज सकता है। यदि कोई बच्चा माता-पिता की निष्ठुरता का शिकार हो तो राज्य उसे उसके माता-पिता से बचाता है और राज्य को यह अधिकार भी है कि उसके माता-पिता को उचित दण्ड दिलाये। रसल के समय में ही यह परिस्थिति भी उत्पन्न हो गई थी कि आम परिवारों में भी, जहां सब कुछ ठीक चल रहा था, माता-पिता तथा उनके बच्चों में विशेषकर निकटता नहीं रह गई थी। अनेक परिवारों में पिता जीवकोपार्जन में इतने व्यस्त हो गये कि उनके पास बच्चों के साथ समय बिताने का अवकाश नहीं था। कुछ धनी लोगों के यहां आया के साथ रहकर बच्चा बड़ा होता है। माता-पिता से उसकी दूरी बचपन से ही उत्पन्न हो जाती है। धन-सम्पत्ति का अर्जन सामान्यत: बच्चे के भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए किया जाता है; वहीं दूसरी ओर बच्चे के वर्तमान में उसे माता-पिता के नित्यप्रति के सम्पर्क से वंचित रखा जाता है। रसल कहते हैं कि बच्चे के लिए आर्थिक सुरक्षा के साधन जुटाने में व्यस्त लोग भावना के स्तर पर उनसे दूर होते जाते हैं।

प्रथम महायुद्ध के बाद तथा द्वितीय महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व की यह

स्थिति हमारे आधुनिक समाज में और भी अधिक गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। रसल ने जिस प्रकार की बढ़ती हुई दूरी बच्चे व पिता में इंगलैंड व अमेरिका के संदर्भ में पचास वर्ष पूर्व पाई थी, वैसी ही दूरी आज बड़े शहरों के धनी अथवा धनी बनने के प्रयत्न में व्यस्त लोगों में पायी जाने लगी है।

पाश्चात्य देशों में, रसल के जीवन के मध्यकाल तक, परिवार-नियोजन तथा जन-संख्या को कम करने के विभिन्न साधन इतने प्रचलित हो चुके थे कि उन्होंने परिवार को बच्चे को जन्म देने की आदत को बनाये रखने वाली संस्था के रूप में भी महत्त्व दिया है। उनका कहना है कि विवाह तथा परिवार दोनों बच्चे को स्थायित्व की भावना देने तथा उसके विकास के लिए उचित वातावरण बनाने के लिए आवश्यक हैं।

'मैरेज एण्ड मोरल्स' में रसल ने एक ऐसे परिवार की कल्पना की जिसमें पिता का कोई महत्त्व नहीं होगा। केवल मां अपने बच्चों का पालन-पोषण करेगी। उनके अनुसार ऐसे समाज में जहां परिवार पितृ-विहीन हो पुरुष का जीवन एकदम भिन्न हो जायेगा तथा एक ऐसी भावना, जो नारी-पुरुष के प्रेम के ही समान महत्त्वपूर्ण होती है, विलुप्त हो जायेगी। पुरुष कम सक्रिय हो जायेंगे। यह भी सम्भव है कि वह लम्बे समय तक श्रम अथवा व्यवसाय न करें। ऐसे समाज में इतिहास के प्रति भी रुचि कम हो जायेगी।

इस काल्पनिक पितृविहीन परिवार में रसल ने जो गुण पाया वह है युद्ध तथा संग्रह की प्रवृत्तियों की न्यूनता। मनुष्य सन्तान की चिन्ता तथा उनके लिए सुरक्षित भविष्य बनाने के प्रयत्न के ही कारण संग्रह करता है और बड़े पैमाने में किया हुआ संग्रह उसे युद्ध की ओर प्रेरित करता है। ऐसा समाज, जहां परिवार पितृविहीन हो, अच्छा होगा अथवा बुरा यह कहना रसल के लिए कठिन था। परन्तु इतना स्पष्ट है कि वे परिवार को बच्चे के जन्म के लिए आवश्यक समझते हैं और कम से कम मां की अनिवार्यता को स्वीकारते हैं।

विवाह, परिवार अथवा प्रेम की दृष्टि से ही नहीं, सामाजिक जीवन

के अन्य पहलुओं की दृष्टि से भी रसल ने नारी की स्थिति तथा समाज में उसके उचित स्थान का प्रश्न उठाया।

नारी-स्वतंत्रता, यौन सम्बन्ध, प्रेम

रसल के युवा काल में, नारी-स्वतंत्रता आन्दोलन पाश्चात्य मनुष्य के प्रजातंत्र के लिए किए गए संघर्ष का ही एक आवश्यक अंग था। जान स्टुअर्ट मिल ने, जिनके लोकतंत्र-सम्बन्धी विचार आधुनिक इंगलैंड तथा अमेरिका की राजनीति के मूलाधार बन चुके थे, एक पुस्तक 'सबजेक्शन आफ विमेन' लिखी थी। इस पुस्तक की रसल ने बहुत प्रशंसा की और स्वयं को इसमें व्यक्त विचारों से सहमत पाया। रसल के अनुसार मिल के विचारों का उनके (मिल के) बाद वाली पीढ़ी पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वयं रसल भी इस पीढ़ी में गिने जा सकते हैं। यों तो इससे पहले की पीढ़ी भी मिल के विचारों से कम प्रभावित नहीं हुई। रसल की मां इतनी नारीवादी थीं कि उन्होंने रसल के जन्म के अवसर पर प्रथम महिला डाक्टर की (जिन्हें कि प्रैक्टिस करने की अनुमति नहीं थी) सहायता ली थी। रसल जिस युग में पले उस युग में नारी-स्वतंत्रता आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था। सन् १८८० में इंगलैंड में विवाहित स्त्रियों की सम्पत्ति सम्बन्धी कानून बना। इन्हीं दिनों स्त्रियों को मतदान का अधिकार देने से सम्बन्धित बिल बार-बार ब्रिटेन की संसद में पेश किया जाने लगा था।

रसल के लिए नारी-स्वतंत्रता के विषय में उदार दृष्टिकोण अपनाना स्वाभाविक था। नारी-स्वतंत्रता उनके अपने युग का नारा तो था ही, साथ ही एक विचारशील बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के, न्याय तथा सत्य के प्रेमी और दार्शनिक के रूप में भी उनका झुकाव इसके पक्ष में रहा। वे यह मानते हैं कि स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम, रचनात्मक विकास तथा कुंठा-मुक्त जीवन के लिए यह आवश्यक है कि उनमें लिंग-भेद के आधार पर

अनावश्यक भेदभाव न किया जाये और स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्तर का प्राणी न समझा जाये। नारी को आर्थिक दृष्टि से निम्न स्तर का प्राणी न समझा जाये। नारी की आर्थिक स्वतंत्रता उसे समाज में उचित स्थान प्राप्त करने की दिशा में ले जाती है परन्तु रसल के अनुसार केवल आर्थिक स्वतंत्रता काफी नहीं, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है सामाजिक स्वतंत्रता। विवाह तथा नैतिकता के संदर्भ में भी इस विषय को उठाना आवश्यक है।

पूर्वी देशों का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि वहां स्त्रियों के सदाचार की रक्षा उन्हें पुरुषों से अलग रखकर की जाती थी। इस प्रकार उन्हें पाप की सम्भावना से दूर रखा जाता था। पश्चिम में नारी-शिक्षा पहले आई और काफी मात्रा में स्त्रियां घर से बाहर के संसार में निकलकर आने लगीं। इनके अन्दर यौन सम्बन्धों के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा की भावना पैदा करके समाज ने इन्हें पाप की सम्भावना से मुक्त रखने में काफी हद तक सफलता पाई। रसल के अनुसार अनेक नारियों के मन में यह भावना गहरी जा बैठी कि नारी-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध विवाहित जीवन की एक ऐसी आवश्यकता है जो नितान्त आनन्दविहीन है। अपने पति के प्रति कर्त्तव्य की भावना तथा सन्तान की इच्छा के लिए ही स्त्रियों को पुरुष के साथ दैहिक प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहिए। रसल के निरीक्षण के अनुसार इस काल की माताएं अपनी बेटियों को बाहर के संसार में जाने की स्वतंत्रता देने को इसलिए राजी हो सकीं कि उन्हें मालूम रहता था कि उनकी बेटियां विवाहेतर स्त्री-पुरुष के दैहिक सम्बन्ध की कल्पना भी नहीं कर सकतीं; क्योंकि विवाहित जीवन में भी वह यौन सम्बन्धों को केवल कर्त्तव्य की दृष्टि से ही मान्यता देती हैं। आधुनिक काल (अर्थात् रसल के अपने युग) के युवा वर्ग ने तरह-तरह की नैतिक धारणाओं को ललकारा। लोग संकोच की भावनाओं को त्याग कर अधिक मुक्त भाव से एक-दूसरे से मिलने लगे। स्त्री-पुरुष के बीच की दूरी भी कम होने लगी।

रसल ने पहले के नारीवादियों की तुलना अपने काल के नारीवादियों से की है। पहले नारीवादियों का यह प्रयत्न था कि नारियों पर नैतिकता के

जो प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, वे पुरुषों पर भी लगाये जायें। जिस प्रकार नारियों के लिए, विवाह की सीमा के बाहर, यौन सम्बन्ध अनुचित माना गया है, वैसे ही पुरुषों के लिए भी इसकी मनाही होनी चाहिए। ऐसे सम्बन्ध को यदि स्त्री के लिए पाप माना जाये तो पुरुषों के लिए भी इसे पाप की संज्ञा दी जानी चाहिए। आधुनिक नारीवादी, पुरुषों के तथाकथित पाप कर्मों को कम करने की मांग नहीं करते, वरन् चाहते हैं कि नारियों को भी वह सब करने का अधिकार मिलना चाहिए जो कुछ करने का अधिकार पुरुषों को मिलता आया है। "उनके पूर्वज नैतिक दासता की समानता चाहते थे और वह नैतिक स्वतंत्रता की समानता चाहते हैं।" (मैरेज एण्ड मोरल्स)

रसल यौन सम्बन्धों के विषय में जानकारी को स्वस्थ मानसिकता के लिए आवश्यक समझते हैं तथा इस विषय में अनभिज्ञता को बेहद हानिकारक, विवेकहीन प्रतिबन्ध, यौन सम्बन्धी विषयों को लेकर अनावश्यक चुप्पी, दबे-छिपे बात करना, खुलकर बात न कर पाना, 'भद्दे' व 'गन्दे' आदि विशेषणों को नारी-पुरुष के सम्बन्धों से जोड़ देना—एक अस्वस्थ मानसिकता उत्पन्न करते हैं। रसल के अनुसार ऐसे कम लोग हैं जिन्होंने विवाह तथा यौन सम्बन्धों को पारम्परिक दृष्टि से देखते हुए भी उन्हें पूर्णतः स्वीकार किया हो। ऐसे लोगों को, जो विवाहित लोगों के लिए भी यौन सम्बन्धी विषयों पर बात करना बुरा समझते हैं, वे अनेक बुराइयों का शिकार मानते हैं।

यौन सम्बन्धी प्रत्येक विषय को लेकर मन में उत्पन्न होने वाली जिज्ञासा को दबाया जाता रहा है। रसल इस जिज्ञासादमन को विज्ञान की उन्नति में बाधक मानते हैं। बच्चों को जब स्वाभाविक जिज्ञासा से प्रेरित होकर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जाता तथा प्रश्न पूछने पर टोका जाता है तो उनके अन्दर ज्ञान की इच्छा का दमन होता है। कौन-सा ज्ञान उचित और कौन-सा अनुचित है, यह प्रश्न ज्ञान की नैसर्गिक कामना को नष्ट कर देता है। अक्सर माता-पिता यौन सम्बन्धी विषयों के सन्दर्भ में बच्चे से झूठ बोलते हैं। फिर भी बच्चा किसी प्रकार सच्चाई का ज्ञान प्राप्त कर ही लेता है और यह भी जान जाता है कि माता-पिता

ने उससे झूठ बोला है। ऐसी स्थिति में उसके मन में उनके प्रति श्रद्धा नहीं रह जाती और बच्चा खुद भी इस प्रकार के विषयों पर झूठ बोलना सीख जाता है। परिणाम यह होता है कि युवा व्यक्ति के अन्दर भय, घृणा, जिज्ञासा तथा उत्तेजना की भावनाएं मिल-जुलकर उसे पागल-सा बना देती हैं।

रसल कहते हैं कि ईसाई नैतिकता ने यौन सम्बन्ध को गन्दगी से जोड़ दिया। वे बताते हैं कि अपने बच्चों को उन्होंने स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्साहित किया और यह पाया कि उन्हें इन विषयों के प्रति स्वस्थ जिज्ञासा तो है, पर बहुत अधिक नहीं।

अश्लील साहित्य के संदर्भ में रसल मानते हैं कि स्वस्थ तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति से प्रेरित जो तथ्यात्मक ग्रन्थ कामशास्त्र के रूप में लिखे गये हैं, उन्हें अश्लील बताकर उन पर प्रतिबन्ध लगाना अथवा लोगों को उनको पढ़ने से रोकना भला काम नहीं है। हैवलाक एलिस की पुस्तक 'स्टडीज इन द साइकालौजी आफ सेक्स' को इंगलेंड में कानून द्वारा धिक्कारा गया। रसल ने ऐसे समाज की भर्त्सना करते हुए उसे मिथ्याधर्मी बताया। उन्होंने देखा कि आम लोगों की भाषा में तो यौन सम्बन्धी विषयों पर बातचीत करने पर प्रतिबन्ध है, पर कठिन तकनीकी भाषा में वैज्ञानिकों तथा पढ़े-लिखे लोगों द्वारा की गई चर्चा को अनुमति प्राप्त है। इस विरोधाभास के कारण पढ़े-लिखे व अमीर लोगों को तो परिवार-नियोजन जैसे विषयों का ज्ञान शीघ्र प्राप्त हो गया परन्तु जिन्हें इसकी अधिक आवश्यकता थी, उन तक यह ज्ञान शीघ्र पहुंचने का कोई उपाय नहीं हो सका।

अश्लीलता के विरुद्ध बनाये गये कानूनों को रसल ने व्यर्थ माना। उनके अनुसार वह जितना भला करते हैं उतना ही बुरा भी करते हैं। यदि यौन शिक्षा बुद्धिमानी से दी जाये तो अश्लीलता का प्रभाव स्वयं कम हो जायेगा। 'सेन्सरशिप' का सबसे अधिक हानिकारक प्रभाव यह होता है कि जिस संदर्भ में जितनी लुका-छुपी वरती जाती है, उसके विषय में मनुष्य की जिज्ञासा उतनी ही तीव्र हो जाती है। वे कहते हैं कि जो लोग

नारी को अर्धनग्न अवस्था में देखते रहे हों, उन्हें इस अंग-प्रदर्शन से उत्तेजना का अनुभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त उनका विचार है कि बच्चों के लिए अच्छा है कि वे कभी-कभी एक-दूसरे को तथा अपने माता-पिता को नग्न अवस्था में देखें।

रहस्य, भय तथा अपराध की भावना जब यौन प्रवृत्तियों से जुड़ जाती है तो अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। रसल परपीड़क (सैडिस्ट) तथा स्वपीड़क (मैसोचिस्ट) दोनों प्रकार के व्यक्तियों को अपराध-भावना का शिकार मानते हैं। परपीड़क वह व्यक्ति है जो स्त्री को इसलिए अपराधी मानता है कि वह उसे आकर्षित करती है। इसके लिए वह उसे दण्डित करता है और इस प्रकार क्रूरता में आनन्द लेता है। कुछ लोग, जो यौन विषयों में अपराध की भावना से ग्रस्त हैं, अपने साथ की गई क्रूरता में ही आनन्द लेते हैं, विशेष कर शारीरिक सम्बन्धों के संदर्भ में। व्यक्ति को स्वपीड़क (मैसोचिस्ट) कहा गया है।

रसल कहते हैं कि बच्चों में जब स्वाभाविक जिज्ञासा का हनन कर दिया जाता है और अपराध की भावना जन्म लेने लगती है तो उनके अन्दर जो आनन्द तथा आमोद का सहज स्रोत है वही सूखने लगता है। एक स्वाभाविक और प्रबल भावना अपराध की भावना से जुड़ जाती है और उनका सम्पूर्ण विकास कुंठा-ग्रस्त हो जाता है। इसी कारण वे युवा वर्ग के लिए उदार नैतिक दृष्टिकोण के पक्ष में हैं। किशोरावस्था में युवा लोग अनेक नये-नये अनुभवों से गुजरते हैं। अज्ञान अथवा गलत धारणाओं के कारण वे कई बार इन अनुभवों को समझ नहीं पाते। युवा हृदय में एक ओर आदर्शवाद, आदर्श प्रेम, सौन्दर्य तथा कविता की ओर झुकाव तथा दूसरी ओर स्वाभाविक यौन प्रवृत्तियां तथा शरीर में होने वाले परिवर्तन से जुड़ी जिज्ञासा, जो द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न कर देती हैं, उसकी विवेचना रसल ने सहृदयतापूर्वक की है। उन सभी रचनाओं में जिनमें उन्होंने सामाजिक प्रश्नों को उठाया है, उदार नैतिक दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह पाया जाता है। 'मैरेज एण्ड मोरल्स' तथा उनकी आत्मकथा में ऐसे संदर्भ अनेक बार आये हैं।

'मैरेज एण्ड मोरल्स' में युवा मानसिकता का मनोविज्ञान समझने का

प्रयत्न करते हुए वे लिखते हैं कि एक ओर उदात्त प्रेम और दूसरी ओर कामेच्छा से जुड़ी भावनाओं की उपस्थिति और उनका समन्वय न कर पाने के कारण युवा हृदय, विपरीत प्रवृत्तियों के बीच पड़कर उतार-चढ़ाव का अनुभव करता है। युवकों के लिए अच्छे घर की लड़कियों से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना कठिन होता है और वेश्या के पास जाने से भौतिक व आध्यात्मिक जीवन अथवा दैहिक व आदर्श प्रेम का द्वन्द्व समाप्त नहीं होता, वरन् बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में रसल ने अल्पकालिक विवाह को विश्वविद्यालय के छात्रों के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ के लिए तथा उनके मन में उदात्त भावनाओं तथा आदर्शवाद को जीवित रखने के लिए उचित माना। अल्पकालिक विवाह में बच्चों के लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि युवा दम्पत्ती परिवार का पूरा उत्तरदायित्व संभालने के योग्य नहीं होते। परन्तु इससे, रसल के अनुसार, सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि विद्यार्थी नारी-पुरुष सम्बन्धों को विवाह के स्वस्थ संदर्भ में स्वीकार करते हुए यौन प्रवृत्तियों के दबाव से मुक्त हो सकेगा। परिणामस्वरूप, वह अपना सारा ध्यान पढ़ाई-लिखाई में लगा सकेगा। अल्पकालीन विवाह का एक और लाभ भी उन्होंने बताया है। जो युवक और युवती अल्पकाल के लिए विवाहित जीवन व्यतीत कर चुके हैं, वे जब गम्भीरतापूर्वक वैवाहिक सूत्र में बंधेंगे तो उनको अपने इस अनुभव से सहायता प्राप्त होगी और उनका पारिवारिक जीवन ठोस तथा व्यावहारिक आधार पर निर्मित हो सकेगा।

रसल के अनुसार मानव समाज में स्त्रियों की बौद्धिक हीनता मुख्यतः उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा के दमन तथा स्वाभाविक प्रवृत्तियों के हनन के कारण उत्पन्न होती है। दमनशील नैतिक मान्यताओं के गहरे प्रभाव के कारण बहुत-सी स्त्रियां विवाह के बाद भी कुछ विषयों पर, जो वर्जित करार दिये गये हैं, खुलकर बात नहीं कर पातीं, यहां तक कि अपने पति से भी नहीं। सभ्य तथा संभ्रान्त महिलाओं पर यह अवरोध कुछ गहरा ही प्रभाव छोड़ता है। ऐसी महिलाएं शारीरिक सम्बन्धों के प्रति अरुचि की भावना का अनुभव करने लगती हैं। परिणामस्वरूप उनके पति उनके निकट पूर्ण संतोष का अनुभव नहीं कर पाते। रसल कहते हैं कि ऐसी

स्थिति में स्वाभाविक भावनाएं तो नष्ट हो ही जाती हैं, साथ ही इच्छापूर्ति से जुड़ी हुई प्रेम की उदात्त भावना भी प्रायः नष्ट हो जाती है।

स्वस्थ यौन सम्बन्धों को रसल प्रेम-भावना के विकास के लिए आवश्यक समझते हैं। 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में उन्होंने एक स्थान पर प्रेम की भावना के विषय में लिखा है कि "यह एक ऐसे पेड़ की तरह है जिसकी जड़ें जमीन में गहराई तक गई हैं और जिसकी टहनियां ऊपर आसमान की ओर फैली हुई हैं।" प्रकृति ने मनुष्य को अकेले रहने के लिए नहीं बनाया, इसलिए वह अपने प्राकृतिक उद्देश्यों को अकेले पूरा नहीं कर सकता। साथ ही वे यह मानते हैं कि सभ्य मनुष्य अपनी कामेच्छा की पूर्ति प्रेम के अभाव में करने पर पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं होता। रसल के अनुसार प्रेम की भावना का मूलाधार मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकताओं तथा मूल प्रवृत्तियों में ही पाया जा सकता है। साथ ही वे मानते हैं कि वही प्रेम मनुष्य को अकेलेपन की भावना से मुक्त करके सुरक्षा की भावना दे सकता है जो उसे अहं की सीमा से बाहर ले जाये। ऐसे प्रेम की संभावना उदार नैतिकता के आदर्श पर निर्भर है। इसके अभाव में जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि (नारी-पुरुष के पारस्परिक प्रेम) से व्यक्ति वंचित रह जायेगा और ऐसा व्यक्ति ईर्ष्या, उदासी तथा कभी-कभी कठोरता की भावना के बीच रहते हुए निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो जाता है। अभिमानवश अथवा शारीरिक सम्बन्धों में अत्यधिक संकोच के कारण यदि नारी-पुरुष एक-दूसरे को उन्मुक्त भाव से प्रेम का उपहार न दे सकें तो उनका जीवन रूखा, स्नेह-सहानुभूति-शून्य हो जाता है।

कुछ लोग अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए प्रेम की भावना के प्रति समर्पित होने से डरते हैं। रसल के अनुसार यह भय आधुनिक है तथा मूर्खतापूर्ण। वह प्रेम अनेक भलाइयों का स्रोत है जो उदारतापूर्ण है तथा सम्पूर्ण हृदय से किया जाये। रसल प्रेम, बच्चे व व्यवसाय इन तीनों को लोगों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के रचनात्मक स्रोत मानते हैं और इन सबमें प्रेम को सर्वश्रेष्ठ। परन्तु वे उस प्रेम को सराहते हैं जो मुक्त हो तथा प्रेमपात्र को अपने वश में रखने का प्रयत्न न करे। रसल के अनुसार, प्रेमविहीन यौन सम्बन्ध हमारी मूल प्रवृत्तियों की पूर्ति में असफल

रह जाते हैं, अतः बच्चों के लालन-पालन के साथ-साथ नारी-पुरुष के प्रगाढ़ प्रेम के लिए भी जीवन में समुचित स्थान होना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि नारी-पुरुष के नैसर्गिक आकर्षण को समुचित अभिव्यक्ति मिले।

वेश्यावृत्ति

यद्यपि रसल विवाहित व्यक्ति के किसी पर-स्त्री या पर-पुरुष से प्रेम अथवा शारीरिक सम्बन्ध को बुरा नहीं समझते, पर वेश्यावृत्ति के पक्ष में वे नहीं हैं। वे यह नहीं मानते कि वेश्यावृत्ति द्वारा समाज को स्वस्थ रखा जा सकता है क्योंकि वेश्या लोगों की कामेच्छाओं की पूर्ति करती है। उन्होंने 'मैरेज एण्ड मोरल्स' में एक अध्याय इसी विषय पर लिखा और वेश्यावृत्ति के विरुद्ध तीन दलीलें पेश की हैं। पहली—समाज के स्वास्थ्य को हानि, दूसरी—नारी को मनोवैज्ञानिक क्षति और तीसरी—पुरुषों की मनोवैज्ञानिक क्षति। रसल कहते हैं कि वेश्या स्वयं तो मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक रूप से प्रताड़ित होती ही है, साथ ही उसके पास जाने वाले पुरुष भी स्वस्थ मानसिकता के अयोग्य हो जाते हैं। वह अपनी पत्नी तथा वेश्या में इतना अधिक अन्तर मानते हैं कि एक को आदर तो दे पाते हैं परन्तु उसके साथ स्वस्थ यौन-सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते तथा दूसरे के साथ उन्हें शारीरिक निकटता के अतिरिक्त किसी प्रकार की निकटता का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार वह नैतिक हीनता की भावना से ग्रसित रहते हैं।

पारम्परिक नैतिकता को ही रसल ने वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण माना है। वे मानते हैं कि जिस समाज में नारी को पुरुष की ही तरह स्वाभाविक रूप से अपनी कामनाओं तथा इच्छाओं को व्यक्त करने तथा उनकी पूर्ति का अधिकार तथा अवसर प्राप्त है, वहां वेश्यावृत्ति काफी कम हो जाती है क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं रहती। वेश्यावृत्ति का प्रचलन नारी को हर प्रकार से हीनता की स्थिति में, तथा सुख की सम्भावना से

दूर रखता है। पत्नी के रूप में वह एक कारण से कुंठित तथा दुःखी रहती है और वेश्या के रूप में दूसरे कारण से। रसल के अनुसार सभ्य समाज में मनुष्य की कामेच्छाओं की पूर्ति तथा उसके साधनों की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाये तथा नारी-पुरुष दोनों के सुख, सन्तोष को बराबर महत्त्व दिया जाये तो वेश्यावृत्ति का अन्त हो सकता है।

विवाह-विच्छेद तथा वैवाहिक सुख

पारम्परिक समाज तथा सभ्य जीवन की मान्यताओं को रसल एकनिष्ठ वैवाहिक जीवन के लिए स्वाभाविक स्थिति मानते हैं। ऐसे समाज में स्त्री-पुरुष का सम्पर्क काफी सीमित होता है और एक व्यक्ति का जीवन दूसरे के जीवन से अधिक भिन्न न होने के कारण इस बात से बहुत फर्क नहीं पड़ता कि किस पुरुष का विवाह किस स्त्री से हुआ। लोग अपने वैवाहिक जीवन में ही सुख-सन्तोष पाने के अभ्यस्त हो जाते हैं। असन्तोष की भावना तथा पर-पुरुष अथवा पर-स्त्री के प्रति आकर्षण से उत्पन्न कठिनाइयों का उन्हें सामना ही नहीं करना पड़ता।

आधुनिक समाज में यह एकनिष्ठता नहीं रह पाती क्योंकि लोग एक ही जीवन-साथी के साथ सुखी रहने की क्षमता को खो देते हैं। अधिक लोगों से मिलने का अवसर लोगों में अनेक प्रकार की रुचियों तथा इच्छाओं को जन्म देता है जो एक व्यक्ति के साथ निकट सम्बन्ध में अभिव्यक्त नहीं हो पातीं। आधुनिकता, नारी-स्वतन्त्रता, धर्म तथा परम्परा के प्रभावों में कमी आदि को वे आधुनिक समाज में वैवाहिक जीवन के प्रति पाए गए असन्तोष का कारण मानते हैं। अमेरिका में सरलता से विवाह-विच्छेद सम्पन्न होने लगे तो इस समाधान को रसल ने अनुचित माना। यों तो उन्होंने स्वयं तीन बार विवाह-विच्छेद का अनुभव किया परन्तु वे यह मानते रहे कि जहां सन्तान का अपना अलग स्थान है, पति-पत्नी दोनों बच्चों से प्रेम करते हैं और पति-पत्नी के अपने पारस्परिक सम्बन्धों में

गहराई है, ऐसे प्रगाढ़ प्रेम पर आधारित विवाह-सम्बन्ध जीवन के उतार-चढ़ावों से कमजोर नहीं पड़ता। यदि किसी का जीवन-साथी कुछ समय के लिए, किसी अन्य व्यक्ति के प्रति आकर्षण का अनुभव करने लगे, अथवा उससे शारीरिक प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर ले, तो भी यह आवश्यक नहीं कि पति-पत्नी का सम्बन्ध टूट जाए।

रसल धर्म, विशेष रूप से ईसाई धर्म, द्वारा विवाह-विच्छेद के विरुद्ध दिए गए तर्क को तो ठीक नहीं मानते परन्तु प्रोटेस्टैंण्ट चर्च द्वारा किसी व्यक्ति के पर-स्त्री अथवा पर-पुरुष से सम्बन्ध हो जाने पर किए गए विवाह-विच्छेद को भी अनुचित समझते हैं। यौन आकर्षण के अस्थायी प्रभाव में बनाए गए सम्बन्धों को अनावश्यक महत्त्व देते हुए, उनके कारण पति-पत्नी के स्थायी तथा स्नेहपूर्ण सम्बन्ध को टूटने देना तथा बच्चों की उपस्थिति से सुदृढ़ होते हुए पारिवारिक सम्बन्धों के महत्त्व को नकारते हुए विवाह-विच्छेद करना रसल को अनुचित लगता है। इस सन्दर्भ में, अमेरिका में तलाक की अधिकता के कारणों की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि वहां पारिवारिक भावना बेहद कम है तथा दैहिक सम्बन्धों में एकनिष्ठता को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। उनके अनुसार ईर्ष्या से अभिभूत होकर अपने जीवन-साथी से अलग होना बहुत बड़ी भूल है। वे कहते हैं कि ईर्ष्या के संदर्भ में, आत्म-संयम की विशेष आवश्यकता है। प्रेम की भावना पर प्रतिबन्ध न लगाकर ईर्ष्या की भावना पर वर्जना लगानी चाहिए। प्रेम उदारता तथा व्यापकता की भावना से परिपूर्ण होता है। उस पर प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाना चाहिए ?

रसल के अनुसार यदि दो व्यक्ति सचमुच एक-दूसरे के साथ रहना पसन्द नहीं करते तथा उनकी रुचियों में टकराव है अथवा कोई एक साथी दूसरे पर जुल्म करता हो तो विवाह-विच्छेद आसान होना चाहिए। बच्चों के अभाव में भी विवाह से मुक्ति आसान होनी चाहिए क्योंकि बच्चे ही विवाह का मुख्य आधार तथा उद्देश्य होते हैं। आधुनिक युग में लोग रसल के इन विचारों से शायद अधिक सहमत न हो सकें।

अमेरिका में विवाह-विच्छेद को रसल ने मुख्यत: पारिवारिक भावना के अभाव को कारण माना; परन्तु शायद एक और कारण भी है जो

पाश्चात्य सभ्यता की मूल भावना बन चुका है तथा जिसकी अमेरिका में अधिकता है और वह है व्यक्तिवाद की अधिकता। प्रेम के ऊंचे आदर्शों के बीच, छोटे-छोटे परिवारों में, पति-पत्नी के प्रेम का ही एकमात्र संबंध-सूत्र होना, स्थिति को व्यावहारिक दृष्टि से कठिन बना देता है। एक ओर आदर्शवादी भावना के कारण वैवाहिक जीवन की प्रत्याशाएं होती हैं और दूसरी ओर यथार्थ स्थिति। यथार्थ उन्हें एक-दूसरे की कमियों तथा व्यक्तिगत असन्तोष का साक्षात् कराता है। इस द्वंद्वात्मक स्थिति का परिणाम होता है विवाह-विच्छेद।

रसल ने विवाह को मुख्यत: बच्चों के जन्म तथा विकास के लिए आवश्यक माना। जिस समाज में विवाह परिवार-परम्परा, समाज तथा सन्तान की परवरिश के लिए किया जाता है, न कि केवल अपने सम्बन्धों को कानूनी तौर पर वैध मानने का अधिकार पाने के लिए, वहां पर विवाह का महत्त्व व्यक्तिगत सुख के लिए ही नहीं, वरन् समाज तथा परिवार के सुख के लिए भी होता है। ऐसे विवाह से लोग अधिक सुखी रहते हैं तथा अपने जीवन-साथी के गुण व दोषों को व्यापक दृष्टि से देखने तथा स्वीकारने में सफल होते हैं।

वैवाहिक सुख की शर्त है पति-पत्नी में समानता की भावना तथा एक-दूसरे के लिए आदर का भाव। रसल कहते हैं कि यदि पति-पत्नी एक-दूसरे की स्वतन्त्रता को स्वीकारते हुए भी मानसिक तथा शारीरिक निकटता तथा विचारों की समानता को प्राप्त कर लें तो उनके सम्बन्ध से अधिक सुखद संसार में और कुछ नहीं। इसके अतिरिक्त वे वैवाहिक जीवन में ही नहीं, वरन् पारिवारिक जीवन में भी आदर की भावना को महत्त्व देते हैं तथा बच्चों के प्रति माता-पिता के अपने व्यवहार में आदर भाव का पारिवारिक सुख तथा बच्चे के विकास के लिए, आवश्यक मानते हैं। रसल कहते हैं कि जो माता-पिता अपने बच्चों के व्यक्तित्व का आदर करते हैं, वे उनके ऊपर अधिकार की भावना का दबाब नहीं डालते। ऐसी स्थिति में माता-पिता तथा बच्चों के बीच आनन्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और कोई कटुता उत्पन्न नहीं हो पाती। रसल सुखी परिवार का आधार सुखी दाम्पत्य को ही मानते हैं। कुंठित दम्पत्ती,

माता-पिता के रूप में बच्चे के स्वस्थ विकास में सहायक नहीं हो पाते।

उन्होंने नारी-स्वतंत्रता के सुखद परिणामों के रूप में यह बात पाई कि स्त्रियों को बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में बोलने का अधिकार प्राप्त होने लगा। सामाजिक जीवन में स्थान पाकर नारी आत्म-विकास तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार भी पा सकती है। रसल ने ऐसी नारी में आत्म-विश्वास की भावना को स्वाभाविक पाया। वे मानते हैं कि सुखी व स्वतन्त्र नारी बच्चे का लालन-पालन अधिक स्वस्थ तरीके से कर सकती है क्योंकि समाज में उसका अपना अलग स्थान होता है। उसके विपरीत, अपनी इच्छा के विरुद्ध घर की चारदीवारी में बंधी हुई नारी, जो पति तथा बच्चों के लिए तरह-तरह से त्याग करती रहती है, वास्तव में अपने जीवन से सन्तुष्ट नहीं होती। रसल के अनुसार ऐसी नारी न तो अच्छी पत्नी बन पाती है, न अच्छी मां। अतः पारिवारिक सुख के लिए भी यह आवश्यक है कि नारी को समाज में उचित स्थान प्राप्त हो। उन्होंने नारी-मुक्ति तथा नारी-जीवन की सार्थकता को, पुरुष के सुखी तथा सफल जीवन के आदर्श से पृथक् करके नहीं देखा वरन् दोनों को एक व्यापक दृष्टिकोण से जोड़ दिया है। आधुनिक काल में दाम्पत्य जीवन उतना सहज नहीं रह गया है; फिर भी, आधुनिक नारी मुक्ति-आन्दोलन रसल के सहज समाज-दर्शन से बहुत कुछ सीख सकता है।

सुख और सुख के साधन

सुख क्या है और सुख पाने के साधन क्या हो सकते हैं, इस प्रश्न के सामाजिक और पारिवारिक संदर्भों से आगे प्रश्न उठता है कि मनुष्य का जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है। 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' पुस्तक में रसल ने इस प्रश्न के व्यक्तिगत पहलू को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। इसमें वे यह जानने का प्रयत्न करते देखे जाते हैं कि सुख की प्राप्ति में कौन-सी मानवीय मनोवृत्तियां तथा स्थितियां बाधक हैं तथा उनसे किस प्रकार मुक्ति पाई जा सकती है।

रसल ने व्यक्ति के जीवन में दुःख के दो भिन्न कारण बताये हैं—एक प्रकृति दत्त और दूसरा मानवीय व्यवहार। दोनों का भेद स्पष्ट करते हुए वे प्रकृति के प्रकोप को मनुष्य के दुःखों का एक ऐसा कारण मानते हैं जिससे छुटकारा दिलाने में विज्ञान सतत प्रयत्नशील है। परन्तु सुख में बाधक अथवा दुःख उत्पन्न करने वाले कुछ ऐसे तत्त्व भी मनुष्य जीवन में पाये जाते हैं जिनका आधार मनुष्य की अपनी भावनाएं तथा कर्म होते हैं। रसल मानते हैं कि कुछ सीमा तक मनुष्य के दुःखों का कारण सामाजिक संस्थाओं में पाया जा सकता है परन्तु उनका मुख्य स्रोत व्यक्तिगत मनोविज्ञान ही है। रसल तो आर्थिक शोषण, निष्ठुरता तथा भय की शिक्षा आदि बुराइयों को भी व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर आधारित मानते हैं। ये बुराइयां उन व्यक्तियों के जीवन में पाई जाती हैं जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुंठित हैं।

रोजमर्रा के जीवन में साधारण किस्म की आनन्दहीनता का कोई स्पष्ट कारण नहीं दिखाई देता। यह दुःख अथवा आनन्दहीनता मुख्यतः संसार

के विषय में गलत धारणाओं, गलत नीति, जीवन में गलत तरीके अपनाने के कारण उत्पन्न होती है। यह जीवन की स्वाभाविक ओजस्विता तथा उन इच्छाओं को जो मनुष्य के सुख से जुड़ी हुई हैं, नष्ट कर देती हैं। उन्होंने स्वयं अपने जीवन का उदाहरण देते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वे बचपन तथा युवावस्था में काफी दुःखी रहा करते थे। गणितशास्त्र के ज्ञान की इच्छा ने उन्हें आत्महत्या से बचाया। पैंतालीस-पचास की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते उन्हें लगने लगा कि जीवन आनन्दपूर्ण हो सकता है। और यह भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई।

रसल अपने जीवन में इच्छापूर्ति के अतिरिक्त जिस बात को महत्त्व देते हैं वह है—अपने में व्यस्त रहने तथा अपने अपराधों व पापों की विवेचना करते रहने की आदत का परित्याग तथा बाह्य जगत् तथा दूसरे व्यक्तियों में रुचि लेने का प्रयत्न। आत्म-व्यस्तता से छुटकारा पाने के लिए बाह्य संसर्ग की भी आवश्यकता होती है। रसल के अनुसार पाप की भावना, आत्म-प्रेम तथा शक्ति-प्रेम ये तीनों मनुष्य को आत्म-व्यस्त बना देते हैं। पाप की भावना से पीड़ित मनुष्य का प्रेम कुंठित तथा निष्ठुरतापूर्ण हो जाता है और कभी आत्म-प्रताड़ना तथा कभी अपने प्रेमी के प्रति कठोरता का रूप धारण कर लेता है। आत्म-प्रेमी में किसी अन्य से प्रेम करने की क्षमता नहीं रहती। वह अपने प्रति दूसरों के प्रेम को तो समझ सकता है पर दूसरों में और कोई रुचि नहीं रखता। ऐसा व्यक्ति आलसी व निकम्मा हो जाता है।

शक्ति-प्रेम को रसल कुछ सीमा तक स्वाभाविक भावना समझते हैं। पर, साथ ही यह भी मानते हैं कि इसकी अधिकता अनेक बुराइयों को जन्म देती है तथा मनुष्य को पागलपन की सीमा तक पहुंचा देती है। अतिशय शक्ति-प्रेमी वही लोग होते हैं जो अपने जीवन में किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करते हैं। जीवन में, मानव स्वभाव के किसी भी एक पहलू को ज्यादा बढ़ावा देने से तथा संसार को अपने ही अहं के विस्तार का स्थान समझने से मनुष्य कभी भी संतोष प्राप्त नहीं कर पाता।

कुछ व्यक्ति दुःख से पलायन ढूंढ़ते हैं—नशा करके। रसल के अनुसार

नशा करना कुछ देर के लिए आत्म-हत्या करने के समान है। ऐसे व्यक्तियों को यह समझाना होगा कि सुख सम्भव है, क्योंकि जो लोग दु:खी होते हैं, उन्हें अपने दु:खी होने का घमण्ड होता है। दु:ख को एक उदात्त भावना समझकर उसी में डूबे रहने वाले व्यक्तियों रसल को मूर्ख समझते हैं। उनके अनुसार कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति सुख को नकार नहीं सकता।

पाश्चात्य सभ्यता के संदर्भ में देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि अनेक लोग जीवन के उतार-चढ़ावों को निरर्थक ही नहीं मानते वरन् जीवन को एक त्रासदी की तरह अनुभव करते हैं। रसल की विवेचना के अनुसार इन लोगों को सब कुछ व्यर्थ लगता है क्योंकि उनकी मूल आवश्यकताएं तो पूरी हो चुकी हैं परन्तु विज्ञान अथवा साहित्य से उन्हें प्रत्याशाएं थीं वे पूरी नहीं हो पाईं। रसल यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक मनुष्य की सामूहिक परिस्थितियां जैसे युद्ध, गरीबी तथा हिंसा, कुछ हद तक, उसके दु:ख का कारण कही जा सकती हैं क्योंकि आज के युग में त्रासदी का अर्थ भी बदल गया है। शेक्सपियर के नाटकों में कोई महान् राजा या राजकुमार अपनी भावनाओं की तीव्रता के कारण त्रासदी का अनुभव करता है। उसके जीवन तथा मृत्यु दोनों में ही एक ऐसी महत्ता रहती है जो आज के युग में रहने वाले एक भिखारी के जीवन या मरण की घटना में नहीं पाई जा सकती। रसल कहते हैं कि आधुनिक काल में कोई एक व्यक्ति अकेले अपने-आप में महानता का प्रतीक नहीं बन पाता, न ही महान् त्रासदी का पात्र; क्योंकि यह युग व्यक्ति का नहीं समष्टि का है। आधुनिक मानव प्रजातंत्र के युग में रहता है।

अपने जीवन में दो विश्वयुद्धों के प्रभावों को निकट से देखने और अनुभव करने के बाद रसल इस बात को भली प्रकार समझ गए थे कि आधुनिक काल में त्रासदी का स्वरूप किसी एक व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियों को अलग करके नहीं समझा जा सकता। एक उदात्त भावना की तलाश में अथवा आदर्शों की खोज में, साहित्यिक स्वप्नों की दुनिया में भटक जाने तथा यथार्थ से मुंह मोड़ लेने के कारण, मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि जीवन उद्देश्यहीन हो गया है और सब कुछ व्यर्थ है। रसल का सुझाव यह है कि इन सब भावनाओं से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य

को कर्मरत हो जाना चाहिए। जीवन से ऊबे हुए बुद्धिजीवियों का इलाज यही है कि वे अपनी मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति को जीवन में समुचित स्थान दें तथा बाह्य जगत् में रुचि लें।

मनुष्य के अपने मनोभावों, मन:स्थितियों तथा व्यवहार से उत्पन्न परिस्थितियों की व्याख्या करते हुए 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' में रसेल ने प्रतिस्पर्धा, ऊब व उत्तेजना, थकान, ईर्ष्या, पाप की भावना, लोगों की राय का डर आदि को मनुष्य के सुख में बाधा डालने वाली मन:स्थितियां माना है। इनकी मनोवैज्ञानिक विवेचना करते हुए वे मनुष्य के सुख की संभावना का प्रश्न उठाते हैं। इन भावात्मक स्थितियों पर नियंत्रण पा जाने के फलस्वरूप मनुष्य प्रकृत प्रवृत्तियों की सभ्य तथा सन्तुलित विधि से पूर्ति करते हुए सुखी जीवन बिता सकता है। केवल पुस्तकीय ज्ञान अथवा मनोविज्ञान की जानकारी को ही नहीं, वरन् जीवन के अनुभवों को एक दृष्टिकोण से बांधकर रसल ने मनुष्य की परिस्थितियों को समझने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टिकोण का विकास रसल के धर्म तथा पारम्परिक नैतिकता से मुक्त वैज्ञानिक मानवतावाद के विकास के साथ हुआ। उनका तथ्यात्मक निरीक्षण तथा उनके निष्कर्ष आम मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण सहज ही स्वीकार किए जा सकते हैं।

मनुष्य के सुख में बाधक मनोभावों में प्रतिस्पर्धा की भावना की अधिकता को रसल ने काफी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। मनुष्य अपने को सदा दूसरों से अधिक सुन्दर, धनवान्, साहित्यिक अथवा सभ्य मानने तथा दिखाने की जरूरत महसूस करता है। रसल के अनुसार यह भावना उसके अन्दर तनाव की स्थिति पैदा कर देती है। ऐसे मनोभाव के दबाव में रहने के कारण मनुष्य धन-दौलत, सुन्दर पति अथवा पत्नी, प्रत्येक प्रकार के सांसारिक सुख-सुविधा के साधनों के बीच भी आनन्द का अनुभव नहीं कर पाता। उसके जूझने व संघर्ष करने का मुख्य लक्ष्य इच्छाओं की पूर्ति के साधन जुटाना नहीं, वरन् दूसरों की अपेक्षा अधिक सफल होना बन जाता है। उसमें सफलता की नई-नई सीढ़ियां चढ़ने की धुन इतनी बढ़ जाती है, वह भूल जाता है कि धन मनुष्य को सुरक्षा तथा अवकाश उपलब्ध कराने का एक साधन है, जिससे मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार

अपना समय साहित्य, कला, संगीत, ज्ञान-विज्ञान में लगा सके और उससे प्राप्त आनन्द का अनुभव कर सके ।

रसल ने अनुभव किया कि आधुनिक काल में लोग धन का अर्जन अक्सर अधिक धन पैदा करने के लिए तथा दिखावे की चीजें जमा करने के लिए करते हैं । किसी अज्ञात भय से प्रेरित होने के कारण मनुष्य धन तथा सांसारिक सफलता की प्राप्ति के प्रयत्न में अनावश्यक रूप से समय लगा देता है । जो लोग स्पर्धापूर्ण सफलता को सुख का मुख्य आधार मान लेते हैं, वे बहुत बड़ी भूल कर बैठते हैं । रसल कहते हैं कि इस भूल का मुख्य कारण यह है कि लोग भूल जाते हैं कि सफलता सुख का एक अंश है, न कि सुख का एकमात्र स्रोत । रसल के अनुसार यूरोप में धन के द्वारा अर्जित सफलता एक वर्ग-विशेष में ही पाई जाती है जबकि किसी वैज्ञानिक, कलाकार अथवा साहित्यकार का गरीब होना गुणों को कम नहीं करता वरन् और भी बढ़ा देता है ।

हमारे युग की एक विशेष स्थिति यह आ गई है कि कई धनी लोग अपने धन के ही कारण ज्ञान, कला व साहित्य के क्षेत्रों में दखल रखने लगे हैं । ऐसे लोगों की अधिकता रसेल के समय से आज तक बढ़ती आई है । वे मानते हैं कि केवल धनी होना ही कला-साहित्य, विज्ञान आदि के क्षेत्र में दखल रखने का अधिकार पाने के लिए काफी नहीं होना चाहिए । उन्होंने ऐसे व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है जो ज्ञान-प्राप्ति अथवा रुचि की पूर्ति के लिए नहीं वरन् महज इसलिए किसी पुस्तक को पढ़ लेते हैं कि वे उसकी चर्चा करके दूसरों को प्रभावित कर सकें । ऐसी स्थिति में लोग कई बार पुस्तक को नहीं वरन् उसके 'रिव्यू' को पढ़कर ही आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेते हैं ।

इन सब बातों से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इच्छा-शक्ति को बुद्धि से अधिक महत्त्व देने के परिणामस्वरूप मनुष्य सफलता को आनन्द से अधिक महत्त्व दे बैठता है और सफलता की इच्छा ही उसके जीवन की मूल प्रेरणा बन जाती है । परिणाम यह होता है कि जीवन के प्रत्येक पहलू में, चाहे वह अवकाश से जुड़ा हो अथवा काम-काज से, स्पर्धा का जहर घुल जाता है । आज की दुनिया में तो कला, साहित्य तथा विज्ञान भी धन के

अभाव में मनुष्य को सामाजिक सम्मान प्रदान करने में पूर्णतः असफल हैं। रसल ने जिस बुराई को आधुनिक काल में पनपते देखा, वह आज खूब फल-फूल रही है। अतः आज का मनुष्य आनन्द से कई कदम और दूर हो गया है।

'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस' में रसल ने ऊब, थकान, ईर्ष्या, पाप की भावना तथा 'लोगों की राय का भय' आदि को सुख में बाधा पहुंचाने वाले अन्य कारणों में मुख्य माना। ऊब वर्तमान परिस्थितियों को किसी अन्य अधिक रोचक, उत्तेजक अथवा आनन्ददायी अनुभव के संदर्भ में देखने के कारण उत्पन्न होती है। ऊब का दूसरा कारण यह होता है कि हमारी विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक शक्तियां कार्यरत नहीं हैं। घटनाओं की कमी, चाहे वे सुखद हों अथवा दुःखद, ऊब को जन्म देती हैं। ऊब का विलोम सुख नहीं वरन् उत्तेजना है। रसल मानते है कि सभ्यता ने उत्तेजना के साधन तो बढ़ा दिए हैं परन्तु इससे मनुष्य में ऊब का भय भी बढ़ गया है। मनुष्य आज उतना ऊबा हुआ नहीं है परन्तु उसे यह डर खाये जाता है कि वह कहीं ऊब न जाये, अतः वह नई-नई उत्तेजक घटनाओं व स्थितियों की खोज करता रहता है। सामाजिक स्तर ऊंचा होने के साथ-साथ ऊब की संभावना भी बढ़ती जाती है। धनी लोगों के पास ऊब से निबटने के अनेक साधन होते हैं जब कि गरीब आदमी को अपना काम उबाने वाला लगता है। उत्तेजना के बाद ऊब और भी अधिक होती है।

थोड़ी-बहुत ऊब को रसल मनुष्य जीवन की आवश्यक अंग मानते हैं और कहते हैं कि इस बात को समझ लेने पर कुछ हद तक ऊब का भय कम हो जाता है। लड़ाई-झगड़े यहां तक कि गुंडागर्दी के पीछे भी ऊब रहती है। इस प्रकार रसल के अनुसार ऊब कई तरह के पाप कर्मों का कारण बन जाती है। वे कहते हैं कि ऊब या तो नशा न करने के कारण होती है अथवा काम के अभाव के कारण। जिस व्यक्ति के जीवन में उत्तेजनापूर्ण अनुभव अधिक हो जाते हैं, उसको आराम नहीं मिलता क्योंकि ऐसा व्यक्ति लगातार अधिक उत्तेजक सामग्री की जरूरत महसूस करता रहता है। परिणामस्वरूप उसमें हर प्रकार के सुख का आस्वादन

करने की शक्ति भी कम हो जाती है। गहन तथा सम्पूर्ण सन्तोष की जगह क्षणिक उत्तेजना, समझदारी की जगह चतुराई, सुन्दरता की जगह नकली आश्चर्य ले लेता है।

रसल न तो उत्तेजना के नितान्त अभाव को उचित मानते हैं, न उसकी अधिकता को। पहली स्थिति का परिणाम घुटन है तो दूसरी का थकान होता है। थोड़ी बहुत ऊब की आदत जीवन के लिए आवश्यक है; इसके पक्ष में उन्होंने महान् साहित्यिक कृतियों का उदाहरण देते हुए कहा है कि उनमें कुछ उबा देने वाले पृष्ठ अवश्य होते हैं, चाहे वह बाइबिल हो या कुरान अथवा मार्क्स की कृतियां अथवा कोई उपन्यास। जिस उपन्यास में आरम्भ से अन्त तक उत्तेजनापूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है, वह बहुधा ऊँचे स्तर का नहीं होता। महान् लेखकों का अपना जीवन भी उत्तेजनारहित तथा शान्त होता है। रसल ने काण्ट तथा मार्क्स का उदाहरण दिया है। इनके जीवन में एक ऐसा आन्तरिक सन्तोष था जो लगातार काम करते रहने से पैदा होता है और जिसके कारण बाह्य उत्तेजना की आवश्यकता नहीं पड़ती।

रसल की यह राय है कि बचपन से ही ऊब से जूझने की आदत डालनी चाहिए। बच्चों के लिए उत्तेजना के ऐसे साधन, जिनके प्रयोग से शारीरिक निष्क्रियता उत्पन्न होती है, बहुत बुरे हैं। नशा इन्हीं में से एक है। वे मानते हैं कि कुछ अच्छी चीज़ें ऐसी हैं जो 'मोनोटनी' के बिना नहीं मिलती। प्रकृति की गति के साथ-साथ चलने में मनुष्य को आराम मिलता है और मनुष्य प्रकृति की भाषा को समझ पाने के साथ सुख का अनुभव करता है। पृथ्वी की लय, उसके मौसमों के उतार-चढ़ावों में आनन्द लेकर हम सन्तोष पा सकते हैं। प्रकृति के निकट सम्पर्क में पाये गए सुखों की यादें भी सुखद होती हैं। एक छोटा बच्चा जब अचानक एक खुले मैदान को देखकर उस पर लोटने लगता है तो उसका आनन्द प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिणाम होता है। इस आनन्द के फलस्वरूप ऊब नहीं, वरन् सुखद स्मृति उत्पन्न होती है जबकि नकली उत्तेजना के साधन नई उत्तेजना की जरूरत को उत्पन्न करते हैं और उसके अभाव में ऊब को जन्म देते हैं।

प्रेम तथा काम-वासना की तुलना करते हुए रसल इसी प्रकार के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। प्रेम में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पुनर्जन्म होता है और वैसी ताजगी का अनुभव होता है जैसी वर्षा से भीगने पर पौधों को होता होगा। प्रेमविहीन काम-वासना से तृप्ति के बाद ऊब, थकान यहां तक कि वितृष्णा की भावना भी पाई जाती है। प्रेम पृथ्वी के जीवन का एक अंग है, काम-वासना नहीं। इसीलिए शान्त जीवन में ही वास्तविक आनन्द है। जहां तक थकान का प्रश्न है, अधिक परिश्रम थकान उत्पन्न करता है। चाहे वह श्रम शारीरिक हो अथवा मानसिक। मानसिक तनाव के कारण भी थकान उत्पन्न होती है। व्यवसायी तथा व्यापारी व्यक्तियों के जीवन में अथवा जिन लोगों को हर वक्त अपरिचित लोगों के बीच रहना तथा अस्वाभाविक व्यवहार करना पड़ता है, उनके जीवन में इस प्रकार का तनाव अधिक पाया जाता है। आधुनिक मनुष्य का जीवन मानसिक तनाव से पूर्ण है। अनावश्यक चिन्ता, बुद्धिमानी तथा संयम का अभाव, अनिश्चितता तथा छोटी-सी बात को बहुत महत्त्व दे देना आदि मानसिक तनाव के कारण हैं।

रसल कहते हैं कि यदि हम देख लें कि जिस बात को हम बहुत महत्त्व देते रहे हैं, वह वास्तव में नगण्य है तो अनेक छोटी बातों से जुड़ी चिन्ता कम हो जायेगी। अपने जीवन में स्वयं रसल ने इस बात का अनुभव किया कि हम सफल हों अथवा असफल, संसार में इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। उनको जब कभी भाषण देना होता था, वह इस चिंता में डूबे रहते थे कि श्रोताओं को भाषण कैसा लगेगा, सब कुछ ठीक-ठाक हो जायेगा या नहीं। बाद में उन्होंने अनुभव किया कि वह अच्छा भाषण दें या बुरा, दुनिया वैसे ही चलती रहेगी। हमारा अहं कोई बहुत बड़ी चीज़ नहीं। अपने से अधिक दूसरों को महत्त्व देने से मानसिक तनाव कम हो जाता है क्योंकि तब हम अपने अहं से ऊपर उठ जाते हैं।

संवेगात्मक थकान भी आराम में विघ्न डालती है। यदि हम अपने काम को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देने लगें तो काम भी एक प्रकार का पलायन बन जाता है। रसल कहते हैं कि चिन्ता एक प्रकार का भय है और भय से थकान उत्पन्न होती है। इसका एक इलाज है—बुरी से

बुरी संभावना के बारे में सोचकर उसका सामना करने को तत्पर रहना। प्रत्येक भय सामना न करने पर बढ़ जाता है; उससे मुंह मोड़कर तो हम उसे अधिक भयावह बना देते हैं। भय पर विजय पाने से रोज़ की परिस्थितियों से थकान नहीं होती। वे यह मानते हैं कि बहुत ध्यान से, बुद्धिमानी तथा शांतभाव से भय के विषय में सोचना चाहिए और उससे पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए—ऐसा करने से भय की भयावहता कम हो जाती है।

रसल ने चिंता तथा साहस की एक रोचक मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है जिसके उदाहरण आम मनुष्य के जीवन में पाये जाते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य में मानसिक साहस बढ़ेगा तो चिंता कम होगी और मानसिक तनाव तथा थकान भी कम हो जायेगी। उदाहरण के रूप में नारी मनोविज्ञान को लेकर वे मानते हैं कि एक साहसी नारी को इस बात को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि उसे पुरुषों का अपने प्रति आकर्षित होना पसन्द है अन्यथा बहुत सारी मानसिक शक्तियां एक स्वाभाविक भावना को छिपाने अथवा नकारने में लगाकर वह क्या प्राप्त कर सकती है? केवल मानसिक तनाव तथा थकान!

रसल अधिक उत्तेजना को भी ऊब के साथ-साथ, थकान का एक कारण मानते हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि जीवन को वहन करने के लिए उत्तेजना आवश्यक है परन्तु फिर भी उसे नाप-तोलकर ही जीवन में स्थान देना चाहिए क्योंकि अधिक उत्तेजना मनुष्य को जीवन के अधिक सौम्य तथा शांत सुखों के अयोग्य बना देती है। उत्तेजना-प्रेमी व्यक्ति साधारण व सामान्य जीवन के सुखों, जैसे कि वैवाहिक जीवन के सुख, को अनुभव करने के योग्य नहीं रहता।

मानसिक तनाव से ग्रस्त व्यक्ति को रसल एक आनन्दविहीन जीवन व्यतीत करने वाले, थकान के अनुभव से बोझिल मनुष्य के रूप में देखते हैं। तनाव बढ़ जाने पर ऐसा व्यक्ति दूसरों से दूर होता जाता है। इतना ही नहीं, वह जीवन की सहज आवश्यकताओं के प्रति उदासीन हो जाता है। भोजन या प्रकृति के स्वाभाविक परिवर्तन आदि में उसे रुचि नहीं रह जाती। छोटी-छोटी बातों पर वह चिड़चिड़ा हो जाता है। उसका सारा

ध्यान किसी छोटी-सी बात में लगा रहता है।

थकान की ही तरह ईर्ष्या की भावना को भी रसल ने सुखद्रोही माना है। साथ ही, ईर्ष्या को वे एक व्यापक तथा सार्वभौम भावना भी मानते हैं। बच्चों तथा बड़ों सभी में यह भावना प्रबल होती है। रसल मानते हैं कि प्रजातन्त्र के मूल में भी ईर्ष्या की भावना ही रहती है। इस सन्दर्भ में उन्होंने ग्रीक दार्शनिक हेराक्लाइट्स के इस कथन को उद्धृत किया है जिसमें उन्होंने 'इफेसस' के नागरिकों को धिक्कारा था क्योंकि उन नागरिकों ने कहा था कि 'हममें से कोई भी प्रथम नहीं होगा'। रसल इसी प्रकार की भावना को ग्रीस में प्रजातन्त्र के विकास के लिए उत्तरदायी मानते हैं।

रसल मानते हैं कि जो व्यक्ति मनुष्य जीवन में सुख की वृद्धि करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि ईर्ष्या के स्थान पर प्रशंसा की भावना को प्रोत्साहन दें; क्योंकि ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों को तो दुःख पहुंचाना चाहता ही है, स्वयं भी दुःखी रहता है। आम आदमी के लिए उन्होंने ईर्ष्या से बचने का एक ही उपाय बताया है। वह है सुखी रहना। ईर्ष्या की भावना को अपने अन्दर पहचानकर उस पर विजय पाने का प्रयत्न करना, अपने सुख के साधनों को खोजकर उनका उपभोग करके सुखी रहना तथा हर क्षण अपनी परिस्थितियों की अपने से अधिक समृद्ध लोगों की परिस्थितियों से तुलना न करना एक बुद्धिमान् मनुष्य का लक्षण है। जो सुख अपने सामने उपस्थित है, उसको ईर्ष्या से विषाक्त न होने देना तथा उसका सहज उपभोग करना ही एकमात्र साधन है ईर्ष्या पर विजय पाने का। वे यह भी मानते हैं कि अपनी बुद्धि का विस्तार करके तथा व्यक्तिगत जीवन के संकुचित दायरे के बाहर निकलकर स्वच्छन्द होकर रहने से भी आनन्द के अनुभव की संभावना बढ़ जाती है और ईर्ष्या कम हो जाती है।

'मैरेज एण्ड मोरल्स', 'कौनक्वेस्ट आफ हैपिनेस', 'व्हाई आई ऐम नोट ए क्रिश्चियन' तथा अपनी आत्म-कथा इन सभी रचनाओं में उन्होंने पाप तथा अपराध की भावनाओं को मनुष्य के जीवन में दुःख का कारण ही नहीं, वरन् एक अस्वस्थ मानसिकता की अभिव्यक्ति भी माना है। ईसाई नैतिकता के प्रचार के साथ इस भावना में वृद्धि आई। रसल मानते

हैं कि बच्चे पर तरह-तरह के नैतिक आदर्श थोपकर उसके मानसिक संतुलन को नष्ट कर दिया जाता है; क्योंकि उसके चेतन, अवचेतन तथा अचेतन के बीच सहज समन्वय नहीं हो पाता। वह भावना के शक्तिशाली प्रवाह में विचारों को भुलाकर पलायन करता रहता है।

रसल मानते हैं कि अपनी नैसर्गिक शक्तियों के पूर्ण विकास द्वारा प्राप्त की गई प्रसन्नता में ही मनुष्य जीवन की सफलता निहित है। इसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्रत्येक स्थिति में दूसरों को कष्ट दिए बिना अच्छी वस्तुओं का उपभोग सुखपूर्वक करे और अनावश्यक रूप से सुखों का परित्याग न करे क्योंकि ऐसा करने पर वह दूसरों के सुखों से ईर्ष्या करने लगता है। दूसरों की बुराइयां नहीं, उनके सद्गुणों को देखने तथा उनके प्रति प्रशंसाभाव रखने वाले व्यक्ति जीवन का अधिक आनन्द ले पाते हैं। बाह्य जगत् तथा दूसरे व्यक्तियों से रुचि लेने वाले व्यक्ति जीवन से जल्दी नहीं ऊबते परन्तु जो लोग पाप की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं, वे अपने को हीन समझने लगते हैं तथा अधिक आत्म-केन्द्रित होते चले जाते हैं। उनमें उदारता की भावना कम होती जाती है। रसल कहते हैं कि विचारशील प्राणी होने के नाते मनुष्य को विचारों द्वारा भावनाओं को संतुलित तथा अनुशासित करने से डरना नहीं चाहिए। बुरी भावनाओं को विचार द्वारा संयमित करने का अर्थ यह नहीं है कि हम रूखे तथा कठोर हो जाएं, वरन् इससे उदार व सुखोन्मुखी भावनाओं के लिए हमारे हृदय में स्थान बन सकेगा।

'लोग क्या कहेंगे' की चिंता के रूप में पाई गई व्यापक भावना को भी रसल मनुष्य के सुख में बहुत बड़ी बाधा समझते हैं। जब हम दूसरों की राय अथवा विचारों को अधिक महत्त्व देते हैं तो हमारे लिए अपने से ऊंचे पद अथवा अपने से अधिक धन वाले व्यक्तियों का अनुसरण करना आवश्यक हो जाता है तथा हम उनकी जीवन पद्धति को अपनाने के लिए बाध्य-सा अनुभव करते हैं। इस प्रकार के व्यवहार के पीछे भी यही भावना रहती है कि लोगों की हमारे विषय में क्या राय है। रसल के अनुसार इस भावना से मुक्ति पाकर ही मनुष्य अधिक शक्ति, उत्साह तथा आनन्द का अनुभव कर सकता है। इस मुक्ति की स्थिति को प्राप्त

करने की जो सहज विधि उन्होंने बताई है वह है : हम उन लोगों से निकटता स्थापित करें जिनसे हमारे विचार मिलते हैं तथा जिनका रहन-सहन हमारे ही समान है, न कि उनके साथ जो पद अथवा धन से ही हमें प्रभावित कर सके हों।

लोगों की राय का भय मनुष्य की उन्नति में बाधा पहुंचाता है और हमारे मन में एक भारी बोझ की भावना को उत्पन्न करता है। हमारा जीवन अपनी जीवन-प्रेरणा से स्फूर्ति प्राप्त करके ही आगे बढ़ सकता है न कि किसी अन्य की जीवन-विधि का अनुसरण करके। रसल की विवेचना के अनुसार सुख दो भिन्न स्रोतों से उद्गमित हो सकता है—हृदय से अथवा बुद्धि से। हृदय से उद्गमित सुख सभी मनुष्यों को प्राप्त होता है। परन्तु बुद्धि से उत्पन्न आनन्द केवल उन्हीं को उपलब्ध होता है जो पढ़-लिख सकते हैं।

रसल का विश्वास है कि आधुनिक युग में सबसे अधिक सुखी व्यक्ति है वैज्ञानिक। वह अपने काम से इतना सन्तुष्ट रहता है कि अपने घर में साधारण मानव सुलभ सुखों की ही तलाश करता है। भोजन, वैवाहिक सुख, बच्चों के प्रेम आदि से वह जीवन का आनन्द प्राप्त करने में सफल होता है। कलाकार व साहित्यकार इन सामान्य सुखों का अनुभव नहीं कर पाते और न ही इन सुखों के उपभोग को जीवन का सहज उद्देश्य बना पाते हैं। आस्थाहीन व्यक्ति की अपेक्षा आस्थावान् व्यक्ति अधिक सुखी होते हैं। समाज-सुधारक अनेक बाधाओं व विरोधों अथवा असफलताओं का सामना करके और कई बार अपने विचारों के लिए दण्ड प्राप्त करने पर भी आस्थावान् तथा आशावादी बने रहते हैं। प्रयत्न करने में ही उन्हें सुख प्राप्त होता है क्योंकि उनमें विश्वास रहता है कि उनका प्रयत्न सार्थक है।

रसल ऐसे कार्य-कलापों को भी महत्त्व देते हैं जिन्हें लोग केवल शौकिया करते हैं न कि किसी लाभ के लिए। इन्हें 'हाबी' कहा जाता है। यह सांसारिक समस्याओं से तात्कालिक पलायन का साधन बन जाती है। रसल को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि यदि मनुष्य दूसरों के प्रति भाईचारे की भावना से प्रेरित होकर सहयोगपूर्ण व्यवहार करे तथा दूसरे

लोगों तथा संसार की अनेक वस्तुओं में मित्रतापूर्ण रुचि रखता हो तो वह सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। लोगों में वास्तविक रुचि रखने तथा उनके प्रति मित्रता भाव रखने पर बन्धुत्व तथा स्नेह भाव उत्पन्न होता है। मित्रतापूर्ण रुचि अधिकार की भावना को जन्म नहीं देती वरन् हमें इस योग्य बनाती है कि हम ऐसे विषयों में रुचि लें जो हमारी जरूरतों की पूर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। इस निष्काम भावना के फलस्वरूप हम एक ऐसे संसार में प्रवेश करते हैं, जहां हमारे व्यक्तिगत दुःख-सुख से परे कुछ अन्य विषय भी महत्त्व रखते हैं। रसल की व्याख्या के अनुसार हमारी रुचियों का दायरा जितना विस्तृत होगा, हमारे आनन्द के स्रोत भी उतने ही अधिक होंगे। उनके मतानुसार सुख के मुख्य स्रोत हैं—जीवन में उत्साह व स्फूर्ति, प्रेम की भावना तथा परिवार, रचनात्मक अथवा आजीविका से सम्बन्धित कार्य तथा ऐसे विषयों में रुचि जो व्यक्तिगत संदर्भ से मुक्त हों।

रसल ने स्फूर्ति, आशावादी उत्साह तथा व्यापक जीवन-दृष्टि को मनुष्य जीवन में सुख का सहज स्रोत माना है। वे कहते हैं कि जो सम्बन्ध भूख का भोजन से है वही स्फूर्ति का जीवन से है। जो व्यक्ति जितने अधिक विषयों में रुचि रखता है, उसे आनन्द के उतने अधिक अवसर मिलते हैं। रुचि तथा स्फूर्ति साथ-साथ चलते हैं। अधिक विषयों में रुचि रखने वाले व्यक्ति को भाग्य पर कम निर्भर करना पड़ता है क्योंकि एक वस्तु या व्यक्ति के अनुभव से निराश होने पर वह दूसरी किसी वस्तु, स्थिति अथवा व्यक्ति से आनन्द पा सकता है। रुचि से जुड़ी होने पर ही घटनाएं अनुभव बन जाती हैं अन्यथा वे अर्थहीन लगती हैं। स्फूर्ति तथा जिजीविषा का कोई अन्त नहीं। जिस व्यक्ति को जीवन से प्रेम है तथा जिसका दृष्टिकोण उत्साहपूर्ण है; वह प्रत्येक अनुभव से, चाहे वह कष्टदायक ही क्यों न हो, आनन्दित अनुभव करता है।

रसल की यह धारणा उनके मन में बहुत गहरी बैठ गई थी कि विशेष विषयों में रुचि रखने के अतिरिक्त सामान्य रूप से जीवन के प्रति रुचि रखना एक स्वस्थ व सुखी मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। एक ओर तो वे मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति को मनुष्य के सामाजिक जीवन तथा स्नेह-

सम्बन्धों के संदर्भ में ही सार्थक पाते हैं, दूसरी ओर वे स्वस्थ जीवन उसे मानते हैं जो प्रकृति के नियमों से संयमित हो। उनका पूरा दृष्टिकोण उपयोगितावादी नैतिकता की पुष्टि करता है। व्यावहारिक दृष्टि से भी यह बात सत्य है कि किसी एक विषय में अतिशय रुचि लेने व दूसरे के प्रति उदासीन रहने से दुःख उत्पन्न होता है। रसल मानते हैं कि स्वस्थ इच्छाएं मनुष्य को मिथ्या बड़प्पन की खोज के लिए प्रेरित नहीं करतीं। मनुष्य अपनी शक्तियों तथा अपने गुणों का विकास अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों तथा इच्छाओं के संदर्भ में करे, यही उचित है। जिस व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को मनोवैज्ञानिक विरोधों का सामना न करना पड़ा हो, वह अपनी परिस्थितियों में सुखी रहता है तथा जीवन के प्रति आशावादी तथा उदारतापूर्ण भाव रखता है।

रसल ने पाया कि सभ्य समाज की अनेक मान्यताएं मनुष्य को आत्म-केन्द्रित बना देती हैं क्योंकि वह मनुष्य की स्वतंत्रता को अनावश्यक रूप से सीमित कर देती हैं। सभ्य मनुष्य समय-समय पर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन करने को मजबूर रहता है। इस प्रकार बच्चों तथा आदिम मनुष्य में, जीवन की प्रत्येक वस्तु के प्रति जो रुचि व प्रेरणा पाई जाती है, वह सभ्य मनुष्य में नहीं होती। सम्माननीयता की भ्रामक धारणा भी जीवन में उत्साहहीनता भर देती है। रसल ने इस सन्दर्भ में, उन स्त्रियों का उदाहरण दिया है जिन्हें पुरुषों में अथवा बाह्य जगत् में रुचि लेने का अवसर नहीं दिया जाता। ऐसी स्थिति में धीरे-धीरे उन्हें किसी भी चीज में रुचि नहीं रह जाती।

स्नेह और सुरक्षा की भावना का अभाव हमारे जीवन में स्फूर्तिहीनता भर देता है। स्नेहविहीन व्यक्ति ईर्ष्यालु हो जाता है। रसल ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे व्यक्ति की भावनाओं को समझने का प्रयत्न किया। उनका विचार है कि स्नेहविहीन व्यक्ति की कुढ़न सारे संसार के प्रति उसके व्यवहार में व्यक्त होती है। ऐसा व्यक्ति युद्ध तथा क्रान्ति में अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहता है। इसके अतिरिक्त ऐसे सभी लोग जो अपनी आदतों के दास बन चुके हैं तथा उनके बिना असुरक्षित अनुभव करते हैं, स्नेह व सुरक्षा से वंचित पाए गए हैं। अतः रसल उचित

मात्रा में स्नेह तथा प्रशंसा को मनुष्य में आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करने के लिए आवश्यक मानते हैं।

रसल के जीवन व चिन्तन दोनों के संदर्भ में यह पाया जाता है कि उनके लिए सुखी जीवन में प्रेम का बहुत बड़ा योगदान है। वे उसी प्रेम को सर्वोत्तम मानते हैं जो पारस्परिकता की भावना से परिपूर्ण हो, निष्प्रयत्न हो तथा जिसका आदान-प्रदान आनंद भाव से किया जाये। समान उद्देश्य, परस्पर रुचि तथा एक-दूसरे के हित के साधन—इन सभी की उपस्थिति सुखी जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। रसल के अनुसार प्रेम वह भावना तथा प्रयत्न है जो मनुष्य को अहं के कठिन व शक्तिशाली कारागार से मुक्त कर देता है। प्रेम में पाने तथा देने की सहज सन्तुलन हो सकता है। इसी कारण रसल पारस्परिक प्रेम में पड़ने वाली बाधा को संसार की सबसे बड़ी बुराई मानते हैं। प्रेम के आदान-प्रदान में बरती जाने वाली सावधानी अथवा अनुदारता को वह भय तथा भीरुता का परिणाम समझते हैं तथा अत्यधिक हानिकारक मानते हैं। उनका कहना है कि प्रेम तथा उदारता की भावना का हनन करके हम सुख की सम्भावनाओं को नष्ट कर देते हैं।

रसल ने श्रम तथा विश्राम के सन्तुलन को भी स्वस्थ तथा सुखी जीवन की शर्त माना। जो व्यक्ति काम में व्यस्त रहता है, वह ऊब से तो बचता ही है; साथ ही, सफलता तथा महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करने की आशा भी रखता है। ऐसा व्यक्ति ही विश्राम तथा मनोरंजन के अवसरों का भी अधिक आनन्द ले सकता है। काम में रचनात्मकता व निपुणता का तत्त्व काम को अधिक रोचक बना देता है। वे मानते हैं कि सृजन के लिए, कुछ सीमा तक ध्वंस आवश्यक होता है परन्तु कुछ लोग ध्वंस को ही जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं और अपने को क्रान्तिकारी मानते हैं परन्तु यह नहीं बता सकते कि क्रान्ति के अन्त में ध्वंस के परिणामस्वरूप क्या होगा।

रसल यह भी मानते हैं कि घृणा पर विजय पाने का सबसे अच्छा तरीका है, किसी रचनात्मक कार्य में जुट जाना। कलाकार व्यक्तिगत जीवन में बेहद दुःखी होते हुए भी ऐसी कलाकृति को जन्म दे पाते हैं जो उनके तथा दूसरे व्यक्तियों के आनन्द का स्रोत हैं। इस प्रकार क्रियाशील

व रचनात्मक प्रयत्न द्वारा मनुष्य व्यक्तिगत समस्याओं से अपना ध्यान हटाकर उन पर विजय पाने में सफल हो सकता है। उद्देश्यपूर्ण जीवन में कर्म का एक स्वभाविक स्थान होता है। और यदि कर्म केवल व्यावहारिक जीवन के लिए ही नहीं, वरन् निःस्वार्थ भाव से, व्यापक रुचि के परिणाम-स्वरूप किया जाये तो तनाव तथा थकान उत्पन्न ही नहीं करता।

कर्म-क्षेत्र की थकान दूर करने की विधि, जो रसल बताते हैं वह है, किसी ऐसे काम में रुचि लेना जिसे हम तटस्थ भाव से कर सकें। तटस्थ रुचियां जीवन में सन्तुलन बनाये रखने में सहायक होती हैं। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि मनुष्य जीवन में किसी एक कार्य अथवा समस्या को जरूरत से ज्यादा महत्त्व न दें। यह तभी सम्भव हो सकता है यदि हम तटस्थ भाव को जीवन का एक मूलभूत तत्त्व बना सकें। रसल कहते हैं कि जीवन में सुख-दुःख-भरे, बहादुरी तथा विस्मय के ऐसे अनेक विषय हैं, जिनमें रुचि ली जा सकती है। उन्होंने लिखा है, "महान् आत्मा होने योग्य व्यक्ति अपने मन के द्वार खोलकर विस्तृत जगत् की सब दिशाओं से आने वाली हवाओं को स्वतंत्र रूप से प्रवेश करने का अवसर देगा।"

रसल महानता को मनुष्य के अन्दर की वस्तु मानते हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं, "हमारी समस्त भावनाएं मृत्यु के अधीन हैं, जो किसी भी क्षण हमारे किसी प्रियजन को मार सकती है। इसलिए हमारे जीवन में वैसी संकीर्ण सघनता नहीं होनी चाहिए जो हमारे जीवन को घटनाओं के अधीन कर दे।" (कानक्वेस्ट आफ हैपिनेस)। रसल उसे बुद्धिमान व्यक्ति मानते हैं जो आनन्द की खोज में, अपने जीवन के आधारभूत कार्यों से सम्बन्धित विषयों के अतिरिक्त अनेक दूसरे विषयों में भी रुचि रखता है।

सफलता को अनावश्यक सीमा तक महत्त्व देना तथा अधिकार तथा शासन की प्रवृत्ति पर अंकुश न लगाकर उसे पूरी छूट देना वे उचित नहीं समझते। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि अधिकार या शासन की भावना तथा शक्ति की आराधना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उनके विचार से किसी भी प्रयत्न में मनुष्य को इतना लीन नहीं होना चाहिए कि असफलता मिलने पर वह टूट जाये। अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करने के बाद

परिणाम को भाग्य पर छोड़ देना उचित होगा। परन्तु इसके लिए प्रयत्न के साथ-साथ तटस्थ भाव की भी आवश्यकता है।

निष्काम कर्मयोग का जो सिद्धान्त हम भगवद्गीता से सीखते हैं, कुछ-कुछ वैसी ही सीख रसल नास्तिक होने के बावजूद लोगों को देते हैं। जिस तरह गीता में निष्काम भाव को निराशाजन्य उदासीनता से भिन्न माना गया है, उसी प्रकार रसल भी तटस्टभाव के दो भिन्न रूप मानते हैं। एक रूप वह जो निराशाजन्य होता है तथा दूसरा जो अदम्य आशा तथा उत्साह से उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार की तटस्थता उदारतापूर्ण निष्काम भाव से संबंधित होती है। लेकिन पहले प्रकार की तटस्थता हमें अकर्मण्य बना देती है और इसी कारण अहितकर होती है। रसल को विश्वास था कि यदि हम संसार के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखें तो हमारे व्यक्तिगत जीवन में कितनी निराशा या दुःख क्यों न हों, हम मनुष्य जाति के उज्ज्वल भविष्य को सम्भव समझते रहेंगे। इस संदर्भ में वे उन वैज्ञानिकों का उदाहरण देते हैं जो अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों में सफल नहीं हो सके परन्तु विज्ञान का विकास होते देखकर उन्हें प्रसन्नता होती रही।

यह तो सभी लोग अनुभव करते हैं कि चिड़चिड़ेपन तथा चिन्ता से मनुष्य का भला कभी नहीं हो सकता। रसल ने बुद्धिमान् मनुष्य उसे माना है जो छोटी-छोटी बातों से परेशान नहीं होता। यहां वे किसी महान् आदर्श की बात नहीं कर रहे हैं। वे उस व्यावहारिक तथा लाभप्रद मनोभाव को प्रोत्साहन देना चाहते हैं जो हमें अपने-आप को बहुत महत्त्व देने तथा अपने जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना को बहुत गम्भीरता से देखने की आदत से मुक्त करा सकता है।

रसल के विचार से हम अक्सर अपने मन में किसी त्रासदी के महान् नायक का अपना एक चित्र बना लेते हैं। और इस चित्र के कारण हमारे प्रत्येक कार्य तथा हमारे जीवन की प्रत्येक घटना, हमारे लिए संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अथवा कार्य का रूप ले लेती है। रसल का इस संदर्भ में, एक सुझाव यह है कि हमें अपने मन में अपने अनेक चित्र बनाने चाहिए न कि केवल एक और वह भी त्रासदी के महान् नायक का। उन

अनेक चित्रों में से यदि कुछ हास्यास्पद भी हों तो अच्छा ही होगा क्योंकि जब बाह्य जगत् में हम किसी अन्य के सम्मुख हास्यास्पद व्यक्ति के रूप में आयेंगे, तो हमें अपने मन में कोई परेशानी नहीं होगी।

संसार में कितना प्रयत्न केवल हानिकारक कर्मों के विरुद्ध लड़ने में लग जाता है, अतः रसल उसकी अपेक्षा कर्महीन रहने को ही ठीक मानते हैं। हानिकारक कर्म को रोकने के लिए वे यह आवश्यक मानते हैं कि अहंकार में खोये हुए लोग अपने विषय में भ्रममुक्त हो जायें। रसल इस संदर्भ में भी तटस्थता के भाव का ही सहारा लेते हैं। अपने सम्बन्ध में सत्य का सामना करने के लिए भी इसी बात की आवश्यकता पड़ती है कि हम तटस्थता बरतें। यह भावना हमें निराशा से बचाती है।

रसल मोटे तौर पर जिन चीजों को मनुष्य जीवन में सुख के लिए आवश्यक मानते हैं, वे हैं—भोजन, आश्रय, स्वाध्य, प्रेम, सफलतापूर्ण कर्म, अपनी जाति के प्रति आदर। कुछ लोगों के लिए पारिवारिक जीवन भी उतना ही महत्त्व रखता है। इन सबके होते हुए भी यदि कोई मनुष्य दुःखी है, तो निश्चय ही वह किसी मनोवैज्ञानिक रोग से पीड़ित है।

धर्म-निरपेक्ष, मानवतावादी तथा व्यावहारिक नैतिकता के प्रवर्तक होने के नाते रसल अत्यधिक आत्मत्याग को अस्वाभाविक ही नहीं, वरन् एक अस्वस्थ मनोवृत्ति का द्योतक तथा आत्मरति का ही एक विकृत रूप मानते हैं। उनके अनुसार जो व्यक्ति दूसरे लोगों में तथा संसार की विविध वस्तुओं में वास्तविक रुचि रखता है, वह आत्म-त्याग की भावना के कारण नहीं; वरन् नैसर्गिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर दूसरों के लिए कर्म करने में आनन्द लेता है। सुखी व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्दर से पूर्णतः समन्वित होता है। उसमें व्यक्ति व समाज या अहं जन्य दुःखों के अथवा संघर्ष के लिए स्थान नहीं होता। जीवन-धारा से अपने को पूर्ण करके ही मनुष्य परम आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

रसल ने साधारण मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों तथा नैतिक संभावनाओं को व्यावहारिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। आधुनिक मनोविज्ञान तथा सामाजिक चिन्तन की पृष्ठभूमि में पारम्परिक नैतिकता तथा धर्म को रखते हुए उन्होंने इन दोनों को नकारात्मक दृष्टि से ही

देखा। रसल तथा उनके स्तर के कुछ विद्वान् वैज्ञानिकों तथा विचारकों के लिए यह संभव हो पाया है कि वे नास्तिक होते हुए भी नैतिकता तथा सभ्यता के ऊंचे स्तर पर पहुंच सके तथा अपनी नैतिक प्रेरणाओं को अपने जीवन में समुचित स्थान दे पाये। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या साधारण मनुष्य अथवा साधारण बुद्धिजीवी के लिए इस प्रकार का सन्तुलन संभव है ?

रसल ने अपने को ऐसे युग में पाया जिसमें जीवन को नकारने वाली प्रवृत्तियों की अधिकता ने नैतिकता को विकृत मनोवृत्तियों से जोड़ दिया था। इस प्रकार की नकारात्मक नैतिकता जीवन को आनन्दपूर्ण भाव से भोगने में बाधक बन गई थी क्योंकि आनन्द की भावना अपराध की भावना से जुड़ गई। ऐसी स्थिति में एक अनाध्यात्मिक नैतिकता का जन्म हुआ जो कि अपराध तथा पाप की भावनाओं से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगी। इस नई प्रकार की नैतिकता का एकमात्र आधार मनुष्य की महानता की संभावना को ही माना जा सकता है। मानव-मूल्यों, विज्ञान तथा मनुष्य के सामाजिक जीवन के लौकिक तथा व्यावहारिक सिद्धान्तों पर आधारित यह नैतिकता आधुनिक युग में अनेक दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों का जीवन-दर्शन बन गई। कुछ विचारकों ने इसे मानवतावादी सिद्धान्त के रूप में अपनाया। रसल भी इसी प्रकार की मानवतावादी नैतिकता को मानते जान पड़ते हैं।

रसल नीति का कोई स्थायी तात्त्विक आधार नहीं मानते। वे मनुष्य के जीवन में सुख-शान्ति की संभावना को ही नैतिकता के प्रश्नों के मूल में देखते हैं।

राजनीति तथा नीतिशास्त्र

आधुनिक काल में धर्म तथा परम्परा से नैतिकता को मुक्त करने का प्रयत्न किया गया है। इसका एक परिणाम यह हुआ कि नैतिकता राजनीति का ही एक अंग अथवा उससे उद्गमित व्यक्तिगत व्यवहार-नीति के रूप में स्थापित होने लगी। नैतिकता-सम्बन्धी नहीं, वरन् राजनीति-सम्बन्धी प्रश्न महत्त्वपूर्ण होते चले गये। पाश्चात्य संदर्भ में प्लेटो तथा अरस्तू के काल में राजनीति को नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के अधीन माना गया। प्लेटो के अनुसार राजनीति का उद्देश्य जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि मनुष्य के आदर्श क्या हैं और उसके जीवन का उद्देश्य क्या है। प्लेटो ने माना कि नैतिक जीवन के परम लक्ष्य या चरम श्रेयस् को सामाजिक संदर्भ में उपलब्ध करने के लिए ही राज्य की स्थापना होनी चाहिए।

रसल की मान्यता प्लेटो के सिद्धान्त से भिन्न ही नहीं, उसके विपरीत है। वे राजनीति को नीति का आधार बनाने के पक्ष में हैं और यह सभ्य समाज में ही संभव है। इस मत के अनुसार, 'उचित-अनुचित, भला-बुरा क्या है', यह प्रश्न राजनीति के संदर्भ में ही सार्थक माना जा सकता है, क्योंकि, 'समाज में मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है,' इस प्रश्न का ही यह दूसरा पहलू है। रसल के अनुसार हमारे चिन्तन तथा तर्क को हमारी कामनाओं का दास होना चाहिए; अर्थात् चिन्तन तथा तर्क द्वारा हम यह जान सकते हैं कि किस प्रकार का आचरण इच्छा-पूर्ति के लिए उपयोगी होगा। हमारी कामनाएं हमें यह नहीं बतातीं कि हमें क्या करना चाहिए या क्या बनना चाहिए। साथ ही हमारी सभी

भावनाएं हमें इच्छापूर्ति की ओर प्रेरित नहीं करतीं। कुछ हमें उस ओर ले जाती हैं और कुछ नहीं भी ले जातीं।

इस संदर्भ में रसल सफलता को ही माप-दण्ड मानते हैं तथा सफलता एवं सुख के बीच निकट सम्बन्ध का अनुभव करते हैं। नैतिक सिद्धान्त ही नैतिक मूल्यों का आधार है और नैतिक सिद्धान्त राजनीति के अधीन होते हैं। नैतिक मूल्यों का कोई अन्य आधार नहीं। इस प्रकार हमारे लिए सर्वाधिक महत्त्व का प्रश्न यह हो जाता है कि किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य की इच्छापूर्ति ठीक तरह से हो सकती है।

रसल के नीतिशास्त्र-सम्बन्धी विचार उतने मौलिक नहीं। इस विषय में इंगलैंड के दार्शनिक डेविड ह्यूम की भांति रसल ने नीति के प्रश्नों का सम्बन्ध मनुष्य की कामनाओं से माना। रसल ह्यूम से बहुत प्रभावित हुए। ह्यूम ने, बौद्धिक स्तर पर, नैतिक मूल्यों तथा ईश्वर दोनों को अमान्य घोषित कर दिया था।

रसल नैतिक प्रश्नों का समाधान सभ्य समाज में ही संभव मानते हैं। इसके लिए उन्होंने सह-सम्भावना (कम्पासिबल) के सिद्धान्त को आवश्यक माना है। यह सिद्धान्त वास्तव में हमें यह बताता है कि किस प्रकार मनुष्य की अधिकाधिक सह-सम्भव इच्छाओं को समुच्चित करके, उन्हें एक साथ पूर्ण किया जा सकता है। एक अर्थ में यह एक व्यावहारिक कला है जिसका साधन है राजनीति।

नैतिकता तथा सामाजिक जीवन से जुड़े हुए अनेक प्रश्नों में से जिस मूल प्रश्न पर रसल ने अधिक विचार किया, वह है मानव स्वतंत्रता तथा राजनैतिक सत्ता के बीच संघर्ष के समाधान का प्रश्न। रसल एक सुचारु तथा प्रभावपूर्ण सरकार की आवश्यकता को मानते हैं, परन्तु मनुष्य की स्वतंत्रता को भी उतना ही महत्त्व देते हैं। प्रभुसत्ता तथा स्वतंत्रता के बीच समुचित सन्तुलन किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है, यह प्रश्न प्रत्येक राजनैतिक सिद्धान्त के लिए एक चुनौती का रूप ले लेता है।

वे मार्क्सवादी सिद्धान्त तथा उस पर आधारित समाधान को समुचित नहीं मानते। इसके दो-तीन मुख्य कारण हैं। उनके मतानुसार मार्क्स-वाद एक नूतन प्रकार के अन्याय को जन्म देता है। होता यह है कि कुछ

व्यक्ति जिनको समाजवादी सरकार चलाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है, वे अपने राजनैतिक अधिकारों के सहारे दूसरे नागरिकों पर तानाशाही बरतने लगते हैं। मार्क्सवादियों में एक बड़ा दोष उन्होंने यह भी पाया कि वह समाज तथा राजनीति के लगभग सभी प्रश्नों के समाधान में आर्थिक पहलू को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इसके अतिरिक्त रसल को मार्क्सवादियों से एक और शिकायत भी है। इस सिद्धान्त को मानने वाले विचारक दर्शन को केवल एक प्रभाव अथवा परिणाम (इफेक्ट) के रूप में लेते हैं और केवल इसी रूप में इसमें रुचि रखते हैं। रसल का अपना मत यह है कि प्रत्येक दर्शन एक परिणाम या कार्य ही नहीं वरन् स्वयं कारण (काज) भी होता है। अतः उसे दोनों रूपों में स्वीकार करना चाहिए।

सामाजिक न्याय के लिए समाजवाद तथा प्रजातंत्र दोनों की आवश्यकता होती है। इन दोनों के समन्वय द्वारा एक आदर्श राज्य की संभावना की रसल आशा रखते हैं। इंगलैंड के कुछ विचारकों ने 'गिल्ड सोशलिज्म' नाम से एक समाजवादी सिद्धान्त की स्थापना की थी। रसल इसमें आस्था रखते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि इस प्रकार के समाजवाद द्वारा व्यक्तिगत प्रेरणा तथा स्वतंत्रता को बनाये रखते हुए भी, धन-अर्जन तथा वितरण-प्रणाली पर सरकारी नियंत्रण रखना संभव है। इस प्रकार की व्यवस्था को वे सामाजिक न्याय तथा प्रजातंत्र दोनों के आदर्शों के अनुकूल मानते हैं। सत्ता के अनुचित केन्द्रीकरण को रोकने के लिए प्रजातंत्र की आवश्यकता पड़ती है और सामाजिक न्याय के लिए सरकार द्वारा व्यक्तियों के धन-संचय पर अंकुश के लिए समाजवाद की। अपनी एक रचना 'रोड टू फ्रीडम' में, जो १९१८ में प्रकाशित हुई थी, रसल ने एक सन्तुलित समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया।

सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए वे इस बात को आवश्यक मानते हैं कि मनुष्य की कमियों को समझा जाए। उनके अनुसार मनुष्य स्वभावतः न्यायप्रिय नहीं होता। शक्ति, प्रेम तथा ईर्ष्या की भावनाएं मनुष्य में बहुत प्रबल होती हैं। इन पर अंकुश लगाने के लिए प्रजातंत्र का सहारा लेना होगा। रसल के अनुसार राजनैतिक दृष्टि से प्रजातंत्र के गुण नकारात्मक होते हैं अर्थात् प्रजातंत्र कुछ बुराइयों को रोकने का

साधन है, न कि अपने-आप में श्रेष्ठ शासन-प्रणाली। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि लोकतांत्रिक सरकार अच्छी न हो और वह भी तानाशाही बरतने लगे। ये विचार उनकी कृति 'पावर' (१९३८) में पाए जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में, बेन्थम के बौद्धिकतापूर्ण तथा विवेकप्रधान और रूसो के रूमानी—इन दो प्रकार के उदारतावाद का खूब प्रचलन रहा। 'माई फिलोसफिकल डेवलपमेण्ट' में रसल लिखते हैं कि "सन् १८१४ से १९१४ तक के समय पर उदारतावादी विचारों के प्रभावों का अध्ययन करने से मुझे उन्नीसवीं सदी को समझने में बहुत सहायता मिली।" दो विश्वयुद्धों के पश्चात् स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। बीसवीं सदी में व्यक्ति की स्वतंत्रता से भी अधिक महत्त्व मनुष्य जाति के अस्तित्व तथा सामाजिक सुख-सुविधा के प्रश्नों को दिया जाने लगा और समाजवादी चिन्तन का व्यापक प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देने लगा। रसल भी इस नयी विचारधारा के प्रभाव से अछूते न रहे।

वे यह मानते हैं कि दर्शनशास्त्र तथा मनुष्य की सामाजिक स्थिति में गहरा सम्बन्ध होता है तथा दार्शनिक विचारों द्वारा शासन-प्रणाली तथा समाज दोनों को परिवर्तित किया जा सकता है। इसी आस्था के कारण एक श्रेष्ठ सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था के आदर्श को व्यावहारिक रूप में स्थापित करना उन्हें वांछनीय लगा। उनका विश्वास है कि सच्ची समाजवादी व्यवस्था में वैज्ञानिक-तकनीकि मामलों में सरकारी नियंत्रण होते हुए भी व्यक्तिगत प्रेरणा के लिए स्थान होगा। वे मानते हैं कि किसी भी अच्छी सामाजिक व्यवस्था का उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्रदान करना तथा साधारण व्यक्ति के जीवन में इस न्याय की संभावना द्वारा आशा तथा उत्साह उत्पन्न करना।

इसके अतिरिक्त वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का समाज के हित में योगदान हो तथा उसके व्यवहार में रचनात्मकता, जीवन्तता, स्फूर्ति तथा जीवन के प्रति आनन्द की भावना हो। सामाजिक संस्थाओं के उद्देश्य में व्यक्ति के प्रति इस उत्तरदायित्व को उन्होंने अपनी पुस्तक

'रोड टू फ्रीडम' तथा 'पावर' में महत्त्वपूर्ण माना। राजनैतिक प्रभुता तथा आर्थिक शक्ति का एक ही समुदाय में केन्द्रीकरण तानाशाही की स्थिति उत्पन्न कर देता है। परम्परागत प्रजातंत्र तथा नई विचारधारा वाले मार्क्सवाद, दोनों ही संप्रभुता को संयमित करने के पक्ष में रहे हैं। रसल के अनुसार दोनों इस कार्य में असफल रहे। एक इसलिए कि वह जरूरत से ज्यादा राजनैतिक था, दूसरा इसलिए कि वह केवल आर्थिक पहल को ही महत्त्व देता था।

रसल समाजवाद की आवश्यकता को मानते हैं। परन्तु उसका आधार वे वृहत् आर्थिक संगठनों तथा व्यवस्थाओं पर नियंत्रण रखने की जरूरत को मानते हैं। बिना आर्थिक व्यापारों पर नियंत्रण के आधुनिक राज्य शक्तिहीन लगता है और केवल राजनैतिक प्रभुता द्वारा कोई भी राज्य आर्थिक शक्ति प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार आधुनिक तकनीक जहां भी उपस्थित है, वहां आर्थिक तथा राजनैतिक प्रभुत्ता एक हो जाती है। यह समन्वय स्वतः निरपेक्ष रूप से होता जाता है। इसी को मार्क्स ने विकास के अगले चरण के रूप में स्वीकारा था।

रसल मानते हैं कि आर्थिक प्रभुत्ता की समस्या का हल यही है कि राज्य का उस पर नियंत्रण हो। परन्तु वे यह भी कहते हैं कि हमें कुछ आवश्यक सावधानियां बरतनी पड़ेंगी। ऐसा न किया गया तो जो लोग आर्थिक तानाशाही से मुक्ति चाहते हैं, उन्हें एक ऐसी तानशाही का गुलाम बनना पड़ेगा जो राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की तानाशाही का सम्मिलित तथा एक भयानक रूप है।

इस संदर्भ में उन्होंने अधिकार तथा नियंत्रण के अन्तर को स्पष्ट किया है। जिन चीजों का हमें अधिकार है या जो हमारी हैं, जरूरी नहीं कि हमारा उन पर नियंत्रण भी हो। रेल पथ राज्य का अर्थात् प्रत्येक नागरिक का है परन्तु औसत नागरिक का उस पर कोई नियंत्रण नहीं होता। रसल कहते हैं कि आर्थिक प्रभुता को व्यक्तियों से छीनकर राज्य को देने के बाद, स्थिति बदलती अवश्य है; परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इस बदली हुई परिस्थिति में आम आदमी के अधिकार सुरक्षित रह सकें। किसी भी समाजवाद में, जो प्रजातंत्र द्वारा सीमित न हो, आर्थिक प्रभुता

कुछ लोगों के हाथ में रहेगी और यह आवश्यक नहीं कि वे लोग तमाम मजदूरों के साथ न्याय करें। रसल ने आर्थिक प्रभुता को नियंत्रित रखने के लिए बड़े उद्योगों तथा आर्थिक मामलों में सामूहिक अधिकार को आवश्यक माना है परन्तु समुचित नहीं। वे कहते हैं कि समाज को एक नये और अपेक्षाकृत पूर्ण प्रजातंत्र की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि समाजवाद की। नाम मात्र का प्रजातंत्र व्यर्थ है जिसमें व्यक्ति को केवल वोट देने का अधिकार प्राप्त हो, तथा अन्य विषयों में वह अपने को शक्तिहीन अनुभव करे। रसल के अनुसार ऐसे प्रजातंत्र में उतनी ही घुटन हो सकती है जितनी किसी तानाशाही राज्य में शासित होने पर होती है।

रसल ने प्रजातंत्र की कमजोरियों के कारण उसे धिक्कारने तथा आम आदमी की जगह नायक की प्रतिमा स्थापित करने वाले विचारकों से कार्लाइल तथा नीत्शे का ज़िक्र किया है। व्यवहार में वे नायक की इस अवधारणा को फासिस्ट तथा आधुनिक वैज्ञानिक समाज की आवश्यकताओं के विपरीत मानते हैं। फासिस्ट शासन के ठीक विपरीत समाजवाद व्यक्ति को समष्टि में खो देता है। इन दोनों के अवगुणों को दूर करता है प्रजातंत्र।

सच्चे प्रजातंत्र के लिए वे नागरिक जीवन-पद्धति तथा स्थानीय राजनीति में अधिक रुचि लेने की संभावनाओं को प्रोत्साहन देना आवश्यक समझते हैं। प्रत्येक नगर तथा समुदाय का यही लक्ष्य होना चाहिए कि उनका नगर अथवा समुदाय अधिक श्रेष्ठ तथा विख्यात बने। वही व्यवस्था जनता के संवैधानिक अधिकारों को वास्तविक जीवन में क्रियान्वित करा सकती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सक्रिय रूप से भाग ले सकता हो तथा स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से अपनी मान्यताओं को व्यक्त कर सकता हो। रसल के अनुसार प्रजातंत्र की एक और अच्छाई यह है कि इस व्यवस्था में हिंसा के साधन अपनाए बिना भी मनुष्य अपनी झगड़ालू प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त कर सकता है। चुनाव-भाषण देना, लोकसभा की सदस्यता के लिए लड़ना, अधिकारों की मांग करना, मतभेद, वाद-विवाद आदि के द्वारा अपनी उग्र प्रवृत्तियों को सभ्यता के दायरे में अभिव्यक्त करते हुए

भी स्वस्थ सामाजिक जीवन की चेतना को जगाये रखना सफल प्रजातांत्रिक शासन में संभव होता है।

आधुनिक युग में जिन विचारकों ने विश्व-शासन-प्रणाली की संभावना पर विचार किया है रसल उनमें भी शामिल हैं। उन्होंने परमाणु युद्ध को रोकने के साधन के रूप में विश्व सरकार की संभावना पर विचार किया। साथ ही वे मनुष्य के लिए मानसिक स्वतंत्रता को भौतिक स्वतंत्रता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं और इसलिए पारम्परिक धारणाओं से मुक्ति तथा सामाजिक संदर्भ में प्रगतिशील विचारों की पुष्टि के लिए उचित वातावरण की आवश्यकता पर जोर देते हैं। प्रत्येक देश तथा राज्य में स्वतंत्र संस्थाओं की स्थापना करना तथा इनके विकास को प्रोत्साहन देना वह आवश्यक समझते हैं। इस संदर्भ ब्रिटेन का उदाहरण देते हुए उन्होंने वहां के विश्वविद्यालयों, रायल सोसाइटी तथा बी० बी० सी० से यही आशा की है कि वह ब्रिटेन को आदर्श राज्य बनाने में अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

इस प्रकार विश्व-राज्य की स्थापना और स्वतंत्र स्थानीय संस्थाओं की आवश्यकता, दोनों के महत्त्व को एक साथ मानने में रसल को किसी प्रकार के विरोधाभास का अनुभव नहीं हुआ। विश्व-राज्य यदि कभी सम्भव भी हुआ तो उसका मुख्य उद्देश्य होगा व्यक्तिगत राज्यों के झगड़ों को निपटाना तथा उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत रहने को बाध्य करना। आधुनिक युग में यात्रा तथा यातायात के बढ़ते हुए साधनों द्वारा यह सम्भव हो गया है कि राज्य केवल भौगोलिक ही नहीं, वरन् अन्य सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखते हुए निर्मित हों। इसमें व्यावसायिक पहलू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व-सरकार की योजना भी इसी प्रकार के महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं को ध्यान में रखते हुए बनाई जानी चाहिए।

धर्म तथा ईश्वर

धर्म के सम्बन्ध में रसल का पूरा चिंतन उनके संशयवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ। रसल ने बौद्धिक संशय के क्षेत्र को केवल बौद्धिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं रखा वरन् मनुष्य के विश्वासों को प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया है। उनका यह मत है कि हमारी प्रत्येक धारणा को, जिसे हम मूल रूप से स्वीकार करते हैं, किसी आधार पर स्थित होना चाहिए। हमारे अनुभव तथा ज्ञान की सीमा के बाहर हमारी धारणाओं का कोई बौद्धिक आधार नहीं है। इस प्रकार धार्मिक विश्वासों को आधारहीन मानकर उन्होंने उनसे मुक्ति पाने का प्रयत्न किया। वे ऐसे परिवार में पले थे जिसमें धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था परन्तु इस बात का उन पर उल्टा प्रभाव पड़ा। धर्म के प्रति उनकी नकारात्मक भावना केवल बौद्धिक कारणों से ही नहीं उत्पन्न हुई थी अपितु उन्होंने अपने जीवन में ईसाई धर्म की अनेक मान्यताओं के दु:खद परिणामों का अनुभव भी किया था जिसकी परिणति इस रूप में हुई।

ईसाई धर्म के संदर्भ में उठाए गए ईश्वर-सम्बन्धी विचारों पर तार्किक दृष्टि से विचार करते हुए रसल ने ईश्वर की सत्ता के पक्ष में दी गई युक्तियों का एक-एक करके खंडन किया। इनमें से कुछ युक्तियाँ तथा उनके खंडन उन्होंने 'ह्वाई आई ऐम नौट ए क्रिश्चियन' नामक लेख में प्रस्तुत किए हैं। कुछ लोग मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कारण होता है और कारण पहले है और उसका परिणाम बाद में उत्पन्न होता है। इस संसार का भी कारण पहले होगा। रसल इस युक्ति का खंडन करते हैं। ईश्वर संसार से पहले उसके कारण के रूप में था और उसने इस

संसार को जन्म दिया—इस युक्ति को प्रस्तुत करने वाले विचारकों से वे पूछना चाहते हैं कि कार्य-कारण के क्रम का आरम्भ स्वयं संसार क्यों नहीं हो सकता ? इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठ सकता है कि यदि प्रत्येक वस्तु का कारण होता है तो ईश्वर का भी कोई कारण होना चाहिये, वह क्या हो सकता है ?

प्राकृतिक नियमों के आधार पर दी गई युक्ति के अनुसार प्रत्येक नियम किसी का बनाया हुआ होता है। प्रकृति के नियमों का निर्माता ईश्वर ही हो सकता है। रसल कहते हैं कि प्रकृति के नियमों को किसी का आदेश नहीं माना जा सकता। ये नियम तो प्रकृति के आचरण का विवरण मात्र होते हैं, अतः इस तर्क का मूल आधार ही काफी कमजोर है। इसके अतिरिक्त एक और प्रश्न यह उठता है कि ईश्वर ने यही नियम क्यों बनाये ? यदि यह कहा जाये कि यह नियम ईश्वर ने अपनी खुशी के लिये बनाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ चीज़ें नियम के बिना चलती हैं। इसके विपरीत यदि ईश्वर ने किसी कारण से यह दुनिया बनाई है तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर भी नियमाधीन है; अतः उसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि उससे भी ऊपर कोई नियम है जिसे मानने के वह भी बाध्य है। इस प्रकार इस तर्क की पूर्व मान्यता को रसल दोनों ओर से खंडित कर देते हैं।

संसार के उद्देश्य अथवा तात्पर्य पर आधारित युक्ति के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु उद्देश्यपूर्ण है। यह 'डिज़ाइन' अथवा सोद्देश्यता ईश्वर के ही कारण हो सकती है क्योंकि भौतिक दृष्टि से इसका कोई आधार नहीं होता। रसल डार्विन के प्राकृतिक चुनाव के सिद्धांत का सहारा लेकर इस तर्क का खंडन करते हुए कहते हैं कि जिसे हम उद्देश्य मान रहे हैं वह प्राकृतिक चुनाव मात्र हो सकता है और मनुष्य का जीवन इसी प्राकृतिक चुनाव के नियमाधीन हो सकता है। एक और तर्क उन्होंने दिया—यह संसार हजारों बुराइयों से भरा पड़ा है। यहाँ हिटलर जैसे फासिस्ट भी रहे हैं। क्या इसे दयालु ईश्वर की रचना कहना उचित है ? यदि हम केवल विज्ञान को मानें तो यह भी मानना पड़ेगा कि एक दिन यह संसार नहीं रहेगा। पृथ्वी चांद की तरह शीतल हो जाएगी और इस

पर कोई प्राणी नहीं रह सकेगा। इस सम्भावना के रहते संसार का क्या उद्देश्य है ?

नैतिकता के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को मानने के पक्ष में काण्ट ने यह कहा है कि यदि ईश्वर नहीं है तो भलाई-बुराई का नैतिक भेद आधारहीन हो जाता है। काण्ट भले या बुरे कर्म को उसके फल के आधार पर नहीं मानते। शुभ इच्छा-शक्ति तथा विवेक-बुद्धि पर आधारित कर्म को ही नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानते हैं। ऐसी स्थिति में भले ही कर्म का उचित फल मनुष्य की इच्छा का विषय नहीं होता, परन्तु ईश्वर उसे यह वांछनीय फल प्रदान कर सकता है। इस प्रकार काण्ट के अनुसार नैतिकता की अर्थपूर्णता ईश्वर के अस्तित्व की अवधारणा पर निर्भर करती हैं। इसके विरुद्ध रसल का तर्क यह है कि यदि ईश्वर स्वयं नैतिक दृष्टि से भला है तो भले-बुरे का भेद ईश्वर की सत्ता पर निर्भर नहीं है। यदि ऐसा नहीं है तो नैतिकता का कोई मापदण्ड ईश्वर पर लागू नहीं होना चाहिए।

एक अन्य युक्ति के अनुसार संसार में उपस्थित अन्याय का लेखा-जोखा ईश्वर रखता है और भविष्य में एक दिन न्याय अवश्य होगा। इसके उत्तर में रसल कहते हैं कि संसार में अन्याय का घटित होना ही अपने-आप में ईश्वर की संभावना के विरुद्ध समुचित तर्क है। ईश्वर, जिसे सर्वशक्तिमान् तथा दयालु माना गया है, अन्याय को कैसे संभव होने देता है ?

रसल जीवन-पर्यंत चर्च के नैतिक प्रभावों को नकारते रहे और यह प्रयत्न करते रहे कि उनके बौद्धिक विचारों तथा उनके जीवन में एक सहज सामंजस्य उत्पन्न हो। ज्ञान तथा सद्गुण के बीच जिस प्रकार का सम्बन्ध सुकरात तथा प्लेटो ने माना था, उतना गहरा सम्बन्ध न मानते हुए भी रसल ज्ञान को मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। ज्ञान हमारे जीवन से रहस्यपूर्णता तथा भय की भावना को दूर कर सकता है और भय के दूर हो जाने पर ईश्वर की आवश्यकता नहीं रह जाती। रसल कहते हैं कि भयाकुल होकर ईश्वर का सहारा लेने से अच्छा होगा कि हम अपने कर्म तथा प्रयत्न द्वारा मनुष्य-जीवन को सुधारें

तथा संसार की बुराइयों को दूर करें।

रसल चाहते हैं कि लोग एक ऐसी दुनिया का निर्माण करें जो चर्च की बनाई हुई दुनिया से भिन्न हो। मनुष्य को संसार की बुराइयों तथा अच्छाइयों, सुन्दरता तथा बदसूरती सबको पूर्णतः स्वीकृति प्रदान करते हुए बुद्धि के प्रयोग द्वारा उन पर विजय पाने का प्रयत्न करना चाहिए। रसल के अनुसार ईश्वर का विचार मुक्त पुरुष के लिये नहीं है। एक भले संसार में ज्ञान, करुणा तथा साहस के गुणों की आवश्यकता है और इसके लिए वे ईश्वर की अवधारणा को आवश्यक नहीं समझते।

पाश्चात्य दर्शन में अनुभववाद तथा बुद्धिवाद दोनों रसल के युग तक अपनी चरम सीमा तक पहुंच चुके थे। ये दोनों विरोधी सिद्धान्त मूलतः एक आधार को खोजते हैं—ज्ञान का मूल स्रोत। रसल का दार्शनिक विकास इन दो विचारधाराओं के द्वंद्वात्मक संवाद के बीच हुआ। साथ ही विज्ञान तथा गणितशास्त्र की विचार-पद्धति और मूल अवधारणाएं उनके चिंतन पर व्यापक रूप से आच्छादित रहीं। इन सबके सम्मिलित परिणामों के कारण रसल बौद्धिक विचार तथा इन्द्रियजन्य अनुभवों को विज्ञान के संदर्भ में रखने तथा बुद्धि और अनुभव से परे किसी गूढ़ अन्तर्वेदन को स्वीकार न कर पाने के लिए मजबूर हैं। विज्ञान तथा तर्क से परे जीवन की सारपूर्णता को मानने वाले यूरोपीय विचारक (जैसे अस्तित्ववादी) रसल के सहज बौद्धिक तर्कों को मानव जीवन के सम्बन्ध में किये गये सामान्यीकरण का परिणाम मान सकते हैं। बुद्धि, इन्द्रियजन्य अनुभवों तथा वैज्ञानिक पद्धति तथा उसके आधार पर प्राप्त ज्ञान की अपनी सीमाएं होती हैं। मनुष्य जीवन के अनेक पहलू हैं। उनकी समग्रता तथा अन्तस्सम्बन्धों की जटिलता को बुद्धि के सीमित आयामों अथवा इन्द्रियजन्य अनुभवों द्वारा समझने के प्रयत्न में हम इनमें से कुछ पहलुओं की उपेक्षा कर जाते हैं। अपनी दार्शनिक प्रतिबद्धता के कारण रसल भी अपने को कुछ ऐसी ही स्थिति में पाते हैं।

बौद्धिक आदर्श तथा धार्मिक भावना का अन्तर्द्वन्द्व रसल ने भी अपने जीवन तथा चिंतन में अनुभव किया। धर्म तथा ईश्वर-सम्बन्धी उनके विचारों की पारदर्शी स्पष्टता तथा तार्किक कठोरता एक प्रकार की

अनुदारता की ओर इंगित करती जान पड़ती है। इसको समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि भावना के स्तर पर रसल भी साधारण मानव-संसार से परे एक अनुभवातीत तथा विलक्षण संसार में प्रवेश पाने का स्वप्न देखते रहे। 'माई मेंटल डेवलपमेंट' में उन्होंने लिखा है, "एक दृष्टि से मेरी बौद्धिक यात्रा निराशापूर्ण रही। जब मैं युवा था तब मुझे आशा थी कि दर्शन में मुझे धार्मिक सन्तोष प्राप्त होगा। हेगल को छोड़ देने के बाद प्लेटोनीय अनन्त जगत् ने मुझे एक श्रद्धेय तथा मानवातीत वस्तु प्रदान की। मैंने गणित को वन्दनीय माना। जब विटमिन्स्टाइन ने इसे पुनरुक्तियां-मात्र मानने के लिये मुझे प्रेरित किया तो मुझे दुःख हुआ। मेरी प्रबल इच्छा रही है कि मानव जीवन से परे स्थित भयमिश्रित आदर के योग्य वस्तुओं के प्रति पाये गये संवेगों का कोई यथेष्ट आधार ढूंढ़ सकूं। आंशिक रूप से मैं एकदम साधारण वस्तुओं जैसे नक्षत्रों से भरे हुए आकाश तथा चट्टानों वाले तट पर तूफानी समुद्र के विषय में सोच रहा हूं। आंशिक रूप में वैज्ञानिक जगत् के विषय में भी सोच रहा हूं जो देश तथा काल दोनों दृष्टियों से मनुष्य जाति के जीवन की अपेक्षा अधिक वृहत् है। आंशिक रूप से निरपेक्ष सत्यों की इमारत के विषय में भी सोच रहा हूं, विशेष रूप से जो गणित के सत्यों की तरह केवल उस संसार का विवरण नहीं देते जो वास्तव में घटित हुआ है। वे लोग मेरी मान्यताओं को सन्तोष नहीं प्रदान कर पाते जो मानवतावाद को एक ऐसा धर्म बना देते हैं जिसमें मनुष्य से महान् किसी भी चीज़ को नहीं माना गया। लेकिन फिर भी, मैं यह नहीं मान पाता कि मेरे अनुभव-जगत् में मनुष्यों के अथवा उससे कुछ न्यून मात्रा में पशुओं के अतिरिक्त कुछ है जिसको मैं मूल्यवान् मानूं···इस प्रकार मेरी बुद्धि मानवतावादियों के साथ है और मेरी भावना विद्रोह करती है। इस दृष्टि से 'दर्शन की सांत्वना' मेरे लिए सम्भव नहीं।"

एक साधारण मनुष्य की भांति रसल ने कला, साहित्य, संगीत और नास्तिक होते हुए भी एक अर्थ में धर्म को भी मनुष्य की श्रेष्ठ तथा उदात्त प्रवृत्तियों से सम्बन्धित पाया। इसी प्रकार विज्ञान, गणित तथा दर्शन को भी मनुष्य की ऐसी विशिष्ट उपलब्धियां माना जिनके कारण

मनुष्य जाति का संसार में बने रहना उन्हें बहुत सार्थक जान पड़ता है। इस ईश्वरविहीन संसार में उन्हें मनुष्य जीवन की सुरक्षा का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण लगा है। अपनी पुस्तक 'पोर्टेट्स फ्राम मेमोरी' में वे एक स्थान पर परमाणु युद्ध से मनुष्य जाति को जो खतरा है उसके संदर्भ में लिखते हैं, "युगों तक सूर्य उदित और अस्त हुआ, चन्द्रमा बढ़ा और घटा, सितारे रात को चमके, परन्तु मनुष्य के संसार में आने पर ही इन सबको समझा गया। मनुष्य ने उन रहस्यों को खोज निकाला जिन्हें जानना असम्भव माना जा सकता था। कला, साहित्य तथा धर्म के क्षेत्र में कुछ मनुष्यों ने ऐसी उदात्त भावनाओं का प्रदर्शन किया है जिनके कारण इस जाति की सुरक्षा अपने-आप में वांछनीय हो जाती है। क्या इन सबका अन्त एक तुच्छ भयानकता में इसलिए हो जाएगा कि बहुत थोड़े लोग ही छोटे-छोटे दलों के विषय में नहीं वरन् मनुष्य के विषय में सोचते हैं ?"

रसल ने मनुष्य जाति के प्रति प्रेम को देश-प्रेम से अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। वे प्रत्येक देश के बुद्धिजीवियों से अपील करते हैं कि वे विविध क्षेत्रों में सक्रिय रहते हुए अपने देश की राजनीति को मानव जाति के हित की ओर ले जाएं। जीवन में बुद्धि तथा भावना का सन्तुलन स्थापित करने के लिए वे स्पष्ट चिन्तन तथा वैज्ञानिक दर्शन प्रणाली को आवश्यक मानते हैं। यदि लोग अपने चिन्तन को शब्दों के संवेगात्मक अर्थ से मुक्त करते हुए पारदर्शिता प्रदान करें तो विचारहीनता, भय, घृणा, ईर्ष्या की भावनाओं पर विजय पाना अधिक सहज हो जाए। धार्मिक व्यक्तियों के लिए ईश्वर में आस्था का जितना महत्त्व होता है, रसल के लिए मनुष्य की चिन्तन शक्तियों तथा कर्मपरायणता पर आस्था का उतना ही महत्त्व है।

गणितशास्त्र तथा तर्कशास्त्र

विज्ञान तथा गणितशास्त्र में गहरी रुचि, इन विषयों के विस्तृत तथा गहन अध्ययन और मनन के परिणामस्वरूप रसल इनके दार्शनिक पहलुओं तथा मानव-जीवन के कार्य-कलापों से इनके सम्बन्ध का नए तरीके से विवेचन करने में सफल हुए। इसके अतिरिक्त इन विषयों के अन्तस्सम्बन्धों के अन्वेषण द्वारा अनेक नई सैद्धान्तिक व्याख्याओं तथा पद्धतियों की सम्भावनाएं उत्पन्न हुईं।

'माई फिलौसोफिकल डेवलपमेण्ट' में रसल गणितशास्त्र में तार्किक तकनीक पर लिखते हुए तर्कशास्त्र तथा गणितशास्त्र के बीच पाई जाने वाली दूरी को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं। इस दूरत्व को कम करना उनके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। पारम्परिक गणितज्ञों में दर्शन-शास्त्र तथा उसकी विशिष्ट शाखा, जिसे तर्कशास्त्र कहते हैं, के ज्ञान के अभाव को ही वे दोनों विषयों के बीच में पाए गए दूरत्व का कारण मानते हैं। सन् १९०० में पेरिस अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन परिषद् के सम्मेलन के अवसर पर रसल की भेंट पियनो से हुई। उनकी कृतियों का अध्ययन करने पर रसल को गणितशास्त्र के अनेक ऐसे मूल सिद्धान्तों के विषय में चिन्तन की प्रेरणा मिली, जिन पर तब तक अधिक ध्यान नहीं दिया गया था।

रसल से पहले जर्मन दार्शनिक लाइब्नीज तथा गणितशास्त्री जार्ज बूल ने गणितीय तर्कशास्त्र (मैथमेटिकल लाजिक) की स्थापना की दिशा में कदम उठाये थे। ह्वाइट हेड ने 'यूनिवर्सल एलजेब्रा' नामक पुस्तक में बूल की रचना पर प्रकाश डाला। इन सबको नई दृष्टि से देखते हुए रसल ने

बीजगणित के व्याकरण को समझा। इस दिशा में जर्मन दार्शनिक फ्रेगे ने जो कार्य किया वह भी इस बीच रसल को उपलब्ध हुआ।

पाश्चात्य दर्शन की सभी शाखाओं विशेषकर तर्कशास्त्र पर अरस्तू के चिन्तन का व्यापक प्रभाव रहा है। वह परम्परागत तर्कशास्त्र के जन्मदाता थे और आधुनिक काल के आरम्भ तक तर्कशास्त्र उन्हीं के दिये हुए सिद्धान्तों पर चलता आया है। सन् १६०० से जिस क्रान्तिकारी विचारधारा का पाश्चात्य तर्कशास्त्र तथा गणितशास्त्र में अभ्युदय हुआ उसे रसल के प्रयासों का ही परिणाम कहा जा सकता है।

तर्कशास्त्र में नए दृष्टिकोण के कारण जो परिवर्तन हुए, उनमें प्रमुख था तर्कवाक्यों के वर्गीकरण के क्षेत्र में तथा वर्ग-सम्बन्धी सिद्धान्त के विकास के रूप में। इन परिवर्तनों के साथ ही प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में अनेक तकनीकी सुधार किए गए और गणितीय तर्कशास्त्र एक पूर्णतः विकसित विषय बन गया।

पारम्परिक तर्कशास्त्र में 'सुकरात मरणशील है' तथा 'सभी मनुष्य मरणशील हैं।' इन दो तर्कवाक्यों में अन्तर करने की विधि उपलब्ध नहीं थी। रसल द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार, जो जार्ज बूल के नए गणितीय विचारों पर आधारित है, इनको पूर्णतः भिन्न प्रकार के तर्कवाक्य माना गया। 'सुकरात मरणशील हैं' एक व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में है जिसका नाम सुकरात हैं, जबकि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं।' किसी वस्तु या व्यक्ति के अस्तित्व के वियय में नहीं क्योंकि यह वाक्य वास्तव में 'मनुष्य' तथा 'मरणशीलता' का सम्बन्ध बताता है; यह नहीं बताता कि मनुष्य अथवा मरणशील प्राणी संसार में हैं अथवा नहीं हैं। 'सभी मनुष्य मरणशील हैं।' को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं "यदि 'अ' मनुष्य है तो 'अ' मरणशील है।" इस वाक्य में 'अ' एक चर है और इस कारण परिवर्तनशील है, जिसका स्थान एक विशेष क्षेत्र की कोई भी वस्तु ले सकती है।

वर्ग के प्रत्यय के संदर्भ में कुछ ऐसी समस्याएं रही है जिनको एक नयी व्याख्या द्वारा सुलझाना रसल को आवश्यक लगा। उनके अनुसार किसी वर्ग को जिसका केवल एक ही सदस्य हो, हमें उस वर्ग से भिन्न

मानना होगा। दोनों का तादात्म्य कर देने पर समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। 'पृथ्वी का उपग्रह' एक वर्ग है जिसका एकमात्र सदस्य है चन्द्रमा। इन दोनों को एक मानने पर संख्या तथा संग्रह की तर्कविधि में समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो व्यक्ति चन्द्रमा को देख चुका हो (और इस अर्थ में जानता हो) वह यह भी जानता हो कि वह 'पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह' है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वी का उपग्रह' का अर्थ बदले बिना इस वर्ग के सदस्यों की संख्या बढ़ सकती है; अर्थात् पृथ्वी का कोई अन्य उपग्रह भी प्रकट हो सकता है। वैसा होने पर इस वर्ग के दो सदस्य माने जाएंगे। रसल ने यह दर्शाने का प्रयास किया कि वर्ग-सम्बन्धी इस सिद्धान्त का संख्या की परिभाषा में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वर्ग को उसके सदस्य से भिन्न करके हम शून्य वर्ग की अवधारणा को भी समझ सकते हैं। शून्य वर्ग वह है जिसका कोई सदस्य नहीं।

वर्ग सिद्धान्त का आरम्भ फ्रेगे ने किया और रसल ने इसे पुनः खोज निकाला। इस खोज के कारण आधुनिक गणितशास्त्र में केनटोर के सेट सिद्धान्त की नींव सुदृढ़ हुई। संख्या को वर्ग की भाषा में किस प्रकार समझा जा सकता है, इसका उदाहरण इस प्रकार है: रसल ने दो की संख्या की परिभाषा दी—समस्त जोड़ियों का वर्ग। इस परिभाषा में जोड़ी का अर्थ है वह वर्ग जिसके सदस्य 'अ' और 'ब' हैं, तथा 'अ' और 'ब' एक नहीं हैं। उन्होंने शून्य की परिभाषा दी—उन वर्गों का वर्ग जिनके कोई सदस्य नहीं। इस नई व्याख्या का एक दार्शनिक उद्देश्य यह है कि संख्याएं तात्त्विक पदार्थों का रूप न ले लें वरन् भाषा के प्रयोग की उपयोगी विधि के रूप में मानी जाएं। वर्ग सिद्धान्त द्वारा गणितशास्त्र में पाई गई अनन्त संख्या की समस्या का भी समाधान हो जाता है। गणना की क्रिया के चलते रहने पर संख्या की शृंखला का अन्त नहीं होता परन्तु वर्ग की अवधारणा द्वारा गणना की क्रिया के बिना भी संख्या को समझा जा सकता है।

सन् १९०२ में रसल की पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ मैथेमेटिक्स' प्रकाशित हुई परन्तु कुछ ही समय बाद उन्हें लगने लगा कि इसमें व्यक्त सिद्धान्त अपरिपक्व हैं। इसी बीच रसल तथा ह्वाइटहेड ने मिलकर

गणितशास्त्र के सिद्धान्तों पर काम आरम्भ कर दिया और १९१० में इस सम्मिलित प्रयत्न के फलस्वरूप 'प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका' प्रकाशित हुई। रसल के अनुसार इस रचना का मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना है कि विशुद्ध गणितशास्त्र पूर्णतः तार्किक आधार वाक्यों पर आधारित है तथा ऐसे प्रत्ययों का प्रयोग करता है जिन्हें तार्किक दृष्टि से परिभाषित किया जा सकता है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप गणित के क्षेत्र में बिलकुल नये विषयों पर प्रकाश डालना सम्भव हुआ तथा दर्शन के क्षेत्र में यह जानकारी प्राप्त हुई कि हमारे चिन्तन के लिए बहुत अधिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं है। स्वयंसिद्ध धारणाओं तथा तार्किक प्रत्ययों के आधार पर गणितशास्त्र के बहुत बड़े अंश के निगमन की विधि 'प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका' में प्रस्तुत की गई।

एक अन्य दिशा में आधुनिकीकरण की यह प्रक्रिया प्रतिफलित हुई। सम्बन्धों के अमूर्त सिद्धान्त की नींव पियर्स तथा शोडर ने डाली थी। रसल ने इसको बहुत आगे बढ़ाया। इसके प्रयोग द्वारा वर्ग-विधि और भी अधिक उपयोगी बन गई और केनटोर के सेट-सम्बन्धी सिद्धान्त तथा बीजगणित आदि को भी सम्बन्धों के अमूर्त्त दृष्टिकोण से समझना सम्भव हुआ।

रसल ने सम्बन्ध के प्रत्यय को गणित तथा दर्शन में महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने देखा कि उनके पूर्व अधिकांश दार्शनिकों ने विषय-विधेय तथा पदार्थगुण-सम्बन्धी तथ्यों अथवा तर्क-वाक्यों को ही महत्त्व दिया और सम्बन्धों की उपेक्षा की। रसल के मतानुसार इसका गणित तथा दर्शन दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ा। पारम्परिक तर्कशास्त्र में 'राम लम्बा है' तथा 'राम श्याम से लम्बा है' इन दो वाक्यों में कोई मूल अन्तर नहीं माना गया था। परन्तु आधुनिक तर्कशास्त्र में यह अन्तर बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया। 'राम श्याम से लम्बा है' में विषय तथा विधेय का अन्तर लागू नहीं होता। यहां सम्बन्ध के प्रत्यय द्वारा वाक्य को समझने से वाक्य की तार्किक विशेषताओं को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

बूल तथा पियर्स के चिन्तन में नई विचारधारा का कुछ आभास तो मिलता है परन्तु इन दोनों ही विचारकों ने सम्बन्धों को वर्ग की दृष्टि से

समझा। इसके विपरीत रसल ने सम्बन्धों के तार्किक स्वरूप को वर्गों के तार्किक स्वरूप से अलग माना। उनके अनुसार सम्बन्ध गुणार्थक होते हैं, अर्थात् किसी सम्बन्ध 'स' में बंधे दो पद 'अ' तथा 'ब' के प्रस्तुतीकरण का क्रम भिन्न हो तो भिन्न सम्बन्ध को बताता है। जैसे 'अ' यदि 'ब' का पिता है तो यहां 'अ' 'ब' का पूर्ववर्ती है। यह सम्बन्ध 'ब' से 'अ' के सम्बन्ध से भिन्न है क्योंकि 'ब अ का पुत्र है' में 'ब' पूर्ववर्ती हो जाता है और सम्बन्ध भी बदल जाता है।

सम्बन्ध के प्रत्ययों का प्रतीकात्मक स्वरूप निर्धारित करने के पूर्व उन प्रत्ययों को पहचानकर उनकी सूची बनाना आवश्यक था। इस संदर्भ में रसल ने आठ मुख्य प्रत्ययों को पहचाना। इन प्रत्ययों के अन्तर को मानव-सम्बन्धों के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए रसल ने उदाहरण दिया माता-पिता व बच्चे के सम्बन्ध का। (१) 'ब' के माता-पिता, (२) 'अ' के बच्चे, (३) वे सभी लोग जिनके बच्चे हैं, (४) वे सभी लोग जिनके माता-पिता हैं (प्रथम नारी-पुरुष को छोड़कर सभी), (५) इस सम्बन्ध का क्षेत्र—'अ' सम्बन्ध 'ब' तथा 'ब' सम्बन्ध 'अ' का क्षेत्र अर्थात् वह सब जो किसी के माता/पिता अथवा सन्तान हैं, (६) 'माता/पिता होना' इस सम्बन्ध का विपर्यय है 'सन्तान होना', (७) दादा/दादी (अथवा नाना/नानी) माता/पिता तथा माता/पिता की सापेक्ष उत्पत्ति ('अ' यदि 'ल' के दादा/दादी हैं तो 'अ' तथा 'ब', और 'ब' तथा 'ल' के सम्बन्ध को समझना होगा), (८) आदिवासियों के माता/पिता (यहां माता/पिता उन पदों का वर्ग है जिनका आदिवासियों के किसी सदस्य से सम्बन्ध 'स'—माता/पिता होना) है।

रसल ने अनेक प्रकार के सम्बन्धों को उदाहरण देकर स्पष्ट किया तथा उनके अन्तर की व्याख्या की। कोई ऐसा सम्बन्ध होता है जो किसी पद का केवल एक से हो सकता है। जैसे 'अ का पिता' परन्तु यहां पर हम यह भी देखते हैं कि जो 'अ' का पिता है वह 'ब' का पिता भी हो सकता है। इस प्रकार के सम्बन्ध को रसल ने 'एक-अनेक' माना। कभी दो वस्तुओं में सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् जिस प्रकार केवल एक वस्तु से 'अ' का सम्बन्ध 'स' है उसी प्रकार केवल एक वस्तु का 'अ' से यह सम्बन्ध है। जिस समाज में पति अथवा पत्नी को बहु विवाह का अधिकार नहीं

वहां 'अ' तथा 'ब' यदि पति-पत्नी हैं तो उनका सम्बन्ध 'एक-एक' प्रकार का है।

सम्बन्धों के दो और गुण जो रसल ने बताये वह हैं :(१) समतुल्यता तथा उसके विपरीत असमतुल्यता (२) सांक्रमिकता तथा उसके विपरीत असंक्रमिकता। समतुल्य का उदाहरण है : यदि 'अ' 'ब' का सहपाठी है तो 'ब' भी 'अ' का सहपाठी है। असमतुल्य: यदि 'अ' 'ब' का पति है तो 'ब' 'अ' की पत्नी (सम्बन्ध समतुल्य नहीं)। इसके अतिरिक्त कुछ सम्बन्ध समतुल्य या असमतुल्य दोनों हो सकते हैं जैसे प्रेम का सम्बन्ध। यदि 'अ' को 'ब' से प्रेम है तो 'ब' को 'अ' से प्रेम हो भी सकता है, नहीं भी।

सांक्रमिकता का अर्थ है कि यदि कोई सम्बन्ध 'अ' का 'ब' से, और 'ब' का 'न' से हो, तो वही सम्बन्ध 'अ' का 'न' से होगा; जैसे 'अ' 'ब' से बड़ा (उम्र में) है और 'ब' 'न' से बड़ा है तो 'अ' 'न' से बड़ा होगा।

रसल ने आनुक्रमिक (सीरीज़) के प्रत्यय की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की : आनुक्रमिक एक पदों का संग्रह है जिसमें एक क्रम है। यह क्रम ऐसे सम्बन्ध से निकलता है जिसमें निम्नलिखित तीन गुण होते हैं : (१) असमतुल्यता (जो सम्बन्ध 'अ' का 'ब' से है 'ब' का 'अ' से नहीं), (२) सांक्रमिकता, (३) अनुबन्धिता (यदि एक सम्बन्ध क्षेत्र के दो पद 'अ' और 'ब' हैं तो सम्बन्ध 'अ' का 'ब' से अथवा 'ब' का 'अ' से होगा)। आधुनिक तर्कशास्त्र तथा गणितशास्त्र के क्षेत्र में इन प्रत्ययों का बहुत महत्त्व है।

गणितशास्त्र में 'चयन' (सेलेक्शन्स) के द्वारा गुणा की क्रिया को अनन्त संख्या तक व्याप्त किया गया। रसल तथा ह्वाटइहेड ने 'प्रिन्सिपिया' में चयन के तार्किक सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और यह दिखाया कि यह सिद्धान्त संख्या के प्रत्यय पर आधारित नहीं बल्कि इसके द्वारा संख्या की परिभाषा सम्भव है। उसी प्रकार एक और प्रत्यय, जिसे साधारण भाषा में 'और इसी प्रकार आगे···' कहकर व्यक्त करते हैं, को भी परिभाषित किया। पूर्ववर्तिता (एन्सेस्ट्रल) का सम्बन्ध संख्याओं में पाया जाता है। इसी प्रकार पाश्चात्यता का सम्बन्ध है। संख्या १ का ० से पाश्चात्यता सम्बन्ध है, २ का भी और फिर ३ का, इस प्रकार पूरी एक

संख्या सारणी का ० से वही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

केनटोर के सेट सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए रसल ने पाया कि हमारी तार्किक अन्त:प्रज्ञाएं आत्मघाती होती हैं। इसका उदाहरण उन्होने वर्ग के संदर्भ में दिया। हम देखते हैं कि कोई वर्ग स्वयं अपना सदस्य है और कोई वर्ग नहीं। चम्मचों का वर्ग स्वयं एक चम्मच नहीं, परन्तु उन वस्तुओं का वर्ग जो चम्मच नहीं, स्वयं भी चम्मच नहीं है। सब वर्गों का वर्ग स्वयं भी एक वर्ग है आदि।

यदि कोई मनुष्य कहे, 'मैं झूठ बोल रहा हूं' तो हम क्या मानें ? यदि यह मानें कि वह सच बोल रहा है तो उसका कहना कि वह झूठ बोल रहा है, सच है, अतः वह झूठ बोल रहा है। इसके विपरीत यदि वह झूठ बोल रहा है तो उसका कहना कि वह झूठ बोल रहा है असत्य है। अत: वह सच बोल रहा है। गणित के क्षेत्र में इस समम्या का दूसरा ही रूप देखने को मिलता है। वहां प्रश्न उठता है क्या कोई सबसे बड़ा कार्डिनल अथवा आर्डिनल होता है ? केनटोर ने माना है कि सबसे बड़ी कार्डिनल संख्या जैसी कोई चीज़ नहीं होती।

रसल ने प्रकार के सिद्धान्त (थ्योरी आफ टाइप्स) अथवा अ-वर्ग सिद्धान्त (नो क्लास थ्योरी) का प्रतिपादन इसी दृष्टि से किया। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्ग तथा प्रत्यय यथार्थ वस्तुएं नहीं हैं; वरन् यथार्थ वस्तुओं के विषय में विचार व्यक्त करने की विधि के फलस्वरूप किन्हीं वाक्यों में प्रयोग किये गये पद हैं। इनका अर्थ इनके वाक्यों के संदर्भ में ही है। प्रकार के सिद्धान्त द्वारा रसल ने तार्किक विरोधाभासों की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। स्वयं रसल ने प्रकार के सिद्धान्त को एक रोचक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। इस संदर्भ में वर्ग के प्रत्यय को लेकर वे कहते हैं : मान लीजिए; किसी भोज के बाद आपको तीन प्रकार की मिठाइयों में से तीनों, किन्हीं दो या किसी एक का चयन करने का अवसर दिया जाता है। और आप चाहें तो तीनों में से एक भी न लें। यदि एक भी न लें, तो एक सम्भावना है, इस तरह तीनों को लें तो एक और; यदि किन्हीं दो को लें तो तीन सम्भावनाएं हैं और यदि एक लें तो भी तीन सम्भावनाएं हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर आठ सम्भावनाएं हैं।

इसको दूसरे शब्दों में कहें तो न (n) पदों के वर्ग के २ न (n) उपवर्ग बनते हैं। केनटोर ने सिद्ध किया कि यह बात उस स्थिति में भी सत्य होगी जब 'न' (n) असीम (इनफिनिट) है। रसल ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि संसार में जितनी वस्तुएं हैं उनसे कहीं अधिक उन वस्तुओं के वर्ग हैं; अतः वर्ग स्वयं 'वस्तु' नहीं कहे जा सकते।

उपर्युक्त समस्या का समाधान रसल ने प्रज्ञप्ति व्यापार (प्रपोजीशनल फंक्शन) की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक प्रज्ञप्ति व्यापार जैसे 'फx' में 'x' एक चर (वेरियेबल) है जिसकी जगह एक क्षेत्र की कोई भी वस्तु ले सकती है और वाक्य बन जाता है जो सत्य अथवा असत्य है। यदि 'फ' का अर्थ 'मनुष्य' मानें तो 'फx' का अर्थ 'x मनुष्य है' : यह वाक्य कभी सत्य होगा, कभी असत्य (यदि x की जगह किसी मनुष्य का नाम हो तो सत्य अन्यथा असत्य)। परन्तु 'यदि x मनुष्य है तो वह मरणशील है।' यह वाक्य सदा सत्य होगा। जिस प्रकार प्रज्ञप्ति व्यापार बात करने की एक विधि है (अपने-आप में सत्य अथवा असत्य नहीं), उसी प्रकार वर्ग भी उन वस्तुओं के बारे में बात करने की सुविधाजनक विधि है जिनके लिए प्रज्ञप्ति व्यापार सत्य है (तथा जो उनमें चरों का स्थान ले सकते हैं)।

प्रत्येक कथन को एक विशेष स्तर पर दूसरे कथनों से सम्बन्धित करते हुए रसल ने उन्हें दो भिन्न क्रमों में स्थित माना। प्रथम क्रम में आने वाले वाक्यों के बारे में हम द्वितीय क्रम के स्तर पर बात कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति कहता है, "मैं झूठ बोल रहा हूं" (अर्थात् प्रथम क्रम के वाक्य में) तो उसका वाक्य द्वितीय क्रम में ही आ सकता है क्योंकि प्रथम क्रम के वाक्य को वह इस प्रकार प्रस्तुत नहीं कर सकता। अतः जो वह कह रहा है, वह असत्य है। अर्थात् किसी वाक्य को प्रस्तुत करने तथा उसके बारे में कुछ बात कहना यह दो क्रियाएं दो स्तर पर होतीं हैं। दोनों एक स्तर पर होने पर विरोधाभास उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक विरोधाभास के पीछे कोई स्वसंदर्भ की उपस्थिति रहती है; इसको हटा देने से विरोधाभास दूर हो जाता है। इस प्रकार 'कोई नाई उन सबकी और केवल उनकी हजामत करता है जो अपनी हजामत नहीं करते। क्या वह अपनी हजामत करता

है ?' इस कठिन प्रश्न का उत्तर क्या होगा ? यह प्रश्न भी प्रकार के सिद्धान्त द्वारा ही हल हो सकता है।

सन् १६०५ में 'माइण्ड' नामक दार्शनिक पत्रिका में रसल का 'औन डिनोटिंग' नामक लेख छपा जिसे तर्कशास्त्र के क्षेत्र में रसल का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया। उन्होंने अपना तर्क 'नाम' तथा 'विवरण' के भेद के आधार पर प्रस्तुत किया। यदि निम्नलिखित वाक्य में हम 'रामायण के प्रथम लेखक' के स्थान पर वाल्मीकि लिख दें तो रसल का तात्पर्य स्पष्ट हो जायेगा। 'रमेश यह जानना चाहता है कि क्या वाल्मीकि ही रामायण के प्रथम लेखक थे।' यह स्पष्ट है कि रमेश यह नहीं जानना चाहता है कि 'क्या वाल्मीकि ही वाल्मीकि थे।' अर्थात् वाल्मीकि के नाम को उनके विवरण की जगह नहीं रखा जा सकता यद्यपि दोनों का निर्देश एक ही है अर्थात् दोनों एक ही व्यक्ति के बारे में हैं। किसी भी अर्थपूर्ण वाक्य में कोई नाम बिना किसी निर्देश के प्रयुक्त नहीं होता परन्तु कोई विवरण बिना निर्देश के प्रयोग किया जा सकता है, जैसे 'सोने का पहाड़'। यह विवरण किस प्रकार की वस्तु का है इस बात को हम समझते हैं और इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि संसार में सोने का कोई पहाड़ वास्तव में हो। इसके विपरीत राम, मोहन, वाल्मीकि आदि नाम किसी-न-किसी व्यक्ति को निर्देशित करते हैं। इस प्रकार तर्कशास्त्र में दो पदों का एक ही निर्देश होते हुए भी अर्थ में अन्तर हो सकता है। 'वह पहाड़ सोने का है, अस्तित्वहीन है' की व्याख्या प्रज्ञप्ति व्यापार के आधार पर इस प्रकार की गई—'एक पर्वत है तथा सोने का है।' X यहके प्रत्येक मूल्य के लिए असत्य है अर्थात् X की जगह संसार की किसी भी वस्तु का नाम हम रखें परिणाम एक ही होगा—एक असत्य वाक्य।

इस प्रकार प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में रसल ने अनेक तकनीकी सुधार किए। प्रज्ञप्ति व्यापार के प्रत्यय का आधुनिक प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा है। इसके आधार पर उन्होंने वर्ग के प्रत्यय को विस्तार दिया तथा गणितशास्त्र के अमूर्त विषय से नहीं, बोल-चाल की भाषा से भी दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध स्थापित किया।

अपने विवरण सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ़ डिस्क्रिप्शन) में रसल दो प्रकार

के विवरणों का अन्तर स्पष्ट करते हैं—'द सो एण्ड सो' तथा 'ए सो एण्ड सो'। उन्होंने यह माना कि किसी विवरण के विषय को हम व्यक्तिगत रूप से न जानते हुए भी उसके विषय में परोक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। संसार की सबसे ऊंची इमारत को हमने नहीं देखा हो तो भी हम यह जान सकते हैं कि वह कितनी ऊंची है, कौन-से शहर में है, कब बनी, उसको बनाने में कितना धन लगा आदि। इसके बाद यह भी सम्भव है कि हमें कोई उस इमारत के सामने खड़ा कर दे, पर हमें यह न ज्ञात हो कि यही संसार की सबसे ऊंची इमारत है। यदि हमारा ज्ञान केवल उन्हीं वस्तुओं तक सीमित होता जिनका ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त होता है तो शायद भाषा का प्रयोग भी कठिन हो जाता और ज्ञान भी लगभग असम्भव।

निर्देशात्मक व्याख्या द्वारा रसल ने तार्किक सत्यों के स्वरूप को स्पष्ट किया। तार्किक सत्यों को पुनरुक्तियां कहा गया। तार्किक रूपान्तरों द्वारा विभिन्न धारणाओं को विश्लेषणात्मक रुप से स्पष्ट किया जाता है। यद्यपि एक पुनरुक्ति अर्थ की दृष्टि से पूर्णतः रिक्त होती है परन्तु यह ज्ञान कि अमुक वाक्य एक पुनरुक्ति है, अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण जानकारी है। गणितशास्त्र के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि किस प्रकार विभिन्न समयों पर अनेक नई पुनरुक्तियों को पहचाना तथा दर्शाया गया।

रसल गणित तथा दर्शन के विषयों में गहरा सम्बन्ध ही नहीं, दोनों शास्त्रों में एक तादात्म्य मानते हैं। इस धारण को उन्होंने दो सोपानों में स्थापित किया। पहला यह कि स्वाभाविक अंकों (नेचुरल नम्बर्स) को पूर्णतः तार्किक प्रत्ययों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है और दूसरा यह कि सम्पूर्ण गणितशास्त्र को स्वाभाविक अंकों के प्रत्यय द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

रसल की इस रचनात्मक व्याख्या पर अनेक विचारकों ने आश्चर्य-मिश्रित प्रशंसा व्यक्त की और अनेक गणितज्ञ इस बात से सहमत हुए कि स्वाभाविक अंक ही गणित का मूल विषय है और सभी अन्य विषय इस पर आधारित हैं।

रसल का भाषा-दर्शन

रसल ने भाषा की विवेचना द्वारा दार्शनिक प्रश्नों का समाधान करने की विधि को दर्शनशास्त्र में जो महत्त्व दिया, पाश्चात्य दर्शन में वह पहले नहीं दिया गया था। यों तो प्लेटो के समय से आधुनिक समय तक प्रत्ययों की परिभाषा के अन्तर्गत शब्दों के अर्थ की व्याख्या की जाती रही है। परन्तु उस व्याख्या में शब्द को प्रत्यय का वाहक मानकर तथा उससे ध्यान हटाकर विचार, प्रत्यय, तत्त्व, गुण आदि अमूर्त चीजों पर केन्द्रित करने की परम्परा रही है। पहले अनुभववादी दार्शनिकों ने भाषा के प्रश्न को अमूर्त प्रत्यय के सिद्धान्त के संदर्भ में उठाया। दर्शन में द्रव्य, गुण, तत्त्व, सामान्य आदि के प्रत्ययों की व्याख्या पाई जाती है। जान लाक ने 'वास्तविक' तथा 'नाम के लिए' इन दो प्रकार के द्रव्यों का अन्तर बताते हुए शब्दों के प्रयोग का महत्त्व दर्शाया। इसी प्रकार अमूर्त प्रत्ययों के नाम के अर्थ का प्रश्न उठा। सामान्यों के नाम को बर्कले ने विशेष के द्वारा समझा। ह्यूम ने स्पष्टतः बताया कि दर्शन की अधिकांश समस्याएं वास्तविक नहीं, शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ को ठीक से नहीं समझने से उत्पन्न होती है।

रसल की कृतियों को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने ह्यूम की शिक्षा को गम्भीरता से ग्रहण किया तथा भाषा को दार्शनिक विवेचन का केन्द्र बनाया। मैक्स बैल्क ने अपने एक लेख में रसल के भाषा-सम्बन्धी चिन्तन के संदर्भ में लिखा है, "आजकल शब्द चिह्न विवेचन विधि (सेम्योटिक) की जो सुफलित दशा पाई जाती है, वह रसल के विचारों की उर्वरता का समुचित प्रमाण है।" रसल ने शिकायत की थी कि दर्शन

पर भाषा के प्रभाव को समुचित रूप से नहीं पहचाना गया है। परन्तु आज यह शिकायत कोई नहीं कर सकता क्योंकि संसार के लगभग प्रत्येक दार्शनिक तथा भाषाशास्त्री ने इस बात को माना है कि भाषा के गूढ़ अध्ययन तथा उसके मूल आधारभूत सिद्धान्तों को समझे बिना, दार्शनिक प्रश्नों का अर्थ भी समझ में नहीं आता, उनका समाधान तो दूर की बात है। पाश्चात्य दर्शन में इस चेतना को जगाने का जितना श्रेय रसल को मिलता है, उतना अन्य किसी को नहीं।

भाषा के दार्शनिक विवेचन को रसल ने एक प्रकार का दार्शनिक व्याकरण माना, लेकिन कहीं उनके प्रयासों में यह आशा अभिव्यक्ति पाती रही कि भाषा के गुणों को जानकर हम दर्शन के तात्त्विक प्रश्नों का उत्तर भी दे पायेंगे।

अपनी १९४८ में प्रकाशित पुस्तक 'ह्यूमन नालेज' में रसल ने एक भाग के ऊपर लिखा है। इसमें भाषा के स्वरूप-विचार तथा भाषा के सम्बन्ध, प्रत्यक्ष परिभाषा, विशेष नाम, व्यक्ति परक-विशेष, वाक्य, सत्यता-असत्यता, तार्किक शब्दावली, ज्ञान आदि विविध विषयों की व्याख्या की गई है। अर्थपूर्ण वाक्यों में शब्दों के प्रयोग के तरीकों का उनके सत्य/असत्य होने से क्या सम्बन्ध है? ज्ञान की प्राप्ति में भाषा के मुख्य अंश—शब्द, वाक्य आदि के प्रकारों का अध्ययन तथा व्याकरण और तर्क की दृष्टि से इनके प्रयोगों की व्याख्या से हमें क्या लाभ हो सकता है?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए रसल ने कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों तथा वाक्यों को लिया और उनके अर्थ की व्याख्या करते हुए उनके वैज्ञानिक, तार्किक तथा तात्त्विक महत्त्व को स्पष्ट किया। जैसे व्यक्तिपरक विशेष 'यह,' 'यहां,' 'अब' का अर्थ व्यक्ति-विशेष के संदर्भ में ही अर्थपूर्ण होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति-विशेष के संदर्भ में इसका अर्थ भिन्न होता है (यहां रसल ने अर्थ को निर्देश के रूप में लिया है)। उनके अनुसार इस स्थिति में इन शब्दों के प्रयोग के स्थान पर अव्यक्तिगत संदर्भ वाले विवरण को रखा जाये तो भाषा अधिक वैज्ञानिक हो जायेगी तथा प्रत्येक विशिष्ट परिस्थिति में इसका जो भिन्न-भिन्न अर्थ है, वह स्पष्ट हो जाएगा। जब 'अ' 'ब' से पूछता है, 'तुम कहां हो?' और 'ब'

उत्तर देता है 'मैं यहां हूं' तो इसमें 'मैं' तथा 'यहां' दोनों की जगह पर हम विशिष्ट विवरणों का प्रयोग करने पर कहेंगे 'ब' लन्दन के अमुक मकान के, अमुक कमरे में, अमुक स्थान पर था।'

इसी प्रकार रसल ने कुछ तार्किक शब्दों को लिया जैसे 'नहीं', 'अथवा', 'और', 'सभी', 'कुछ' आदि; और यह दर्शाने का प्रयत्न किया कि इनमें कोई निर्देशात्मक अर्थ नहीं है। अतः इनके प्रयोग की जगह किसी शब्द-समूह के प्रयोग द्वारा उसी अर्थ को प्राप्त किया जा सकता है। 'यह लाल रंग नहीं है।' के लिए 'इसके लाल होने पर अविश्वास करना ठीक है।' कहकर हम 'नहीं' शब्द का प्रयोग किये बिना काम चला सकते हैं।

रसल ने भाषा की उपयोगिता तथा विचार-प्रक्रिया से उसके सम्बन्ध की अभिन्नता को मानते हुए यह भी कहा कि "भाषा एक खतरनाक यन्त्र भी है। यह वस्तुओं के संदर्भ में एक निश्चयता, पृथक्त्व तथा अर्थ-नित्यता का आभास देती है जबकि भौतिक विज्ञान के अनुसार यह गुण वस्तुओं में नहीं होते।" रसल मानते हैं कि एक दार्शनिक का यह उद्देश्य होना चाहिए कि भाषा के उपयोग द्वारा ही उन भ्रामक धारणाओं को दूर करे जो भाषा ने उत्पन्न की हैं। इसी प्रयत्न के संदर्भ में उन्होंने कुछ मूल समस्याओं को ध्यान में रखते हुए 'ह्यू मन नालेज' में तथ्य, सत्यता, ज्ञान, प्रत्ययों तथा विचारों के बाह्य निर्देश आदि से सम्बन्धित प्रश्नों को भाषा की विश्लेषणात्मक व्याख्या से जोड़ा और यह स्पष्ट कर दिया कि दर्शन के मूल प्रश्नों को समझने के लिए यह व्याख्या कितनी आवश्यक है।

रसल के अनुसार विचारों के बाह्य निर्देश को हम अपनी धारणाओं में व्यक्त करते हैं। सत्यता विशेष प्रकार के वाक्यों का गुण है और इसके लिए वाक्य के बाहर उस स्थिति की ओर संकेत करना पड़ता है जिसे वाक्य द्वारा इंगित (अथवा व्यक्त) किया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भाषा में शब्दों तथा वाक्यों का अर्थ-निर्धारण किसी-न-किसी ज्ञान-मीमांसा से जुड़ा होता है। रसल की अपनी व्याख्या से यह जान पड़ता है कि उन्होंने सम्पूर्ण भाषा तथा वस्तु जगत् के सम्बन्ध को मुख्यतः निर्देशात्मक दृष्टि से समझा अर्थात् पहले वे यह मानकर चले कि प्रत्येक शब्द का अर्थ कोई वस्तु (प्रत्यय, भाव, स्थिति आदि) है और फिर कुछ

शब्दों को (भाषा के इस सामान्य गुण का) अपवाद माना। जिन शब्दों को उन्होंने तार्किक शब्द कहा है वे इसी प्रकार के अपवाद हैं।

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन, तर्कशास्त्र तथा भाषा विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह उठाई गई कि शब्द, वाक्य अथवा विवरण की अर्थपूर्णता को तात्त्विक दृष्टि से किस प्रकार समझा जाए। अधिकांश विचारक यह मानते हुए भी कि प्रत्येक शब्द को एक नाम की तरह किसी वस्तु, व्यक्ति, गुण, स्थान या क्रिया से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता, किसी-न-किसी गुण, प्रत्यय, विचार अथवा सामान्य को उसका निर्देश मानते आए हैं। इस प्रकार तत्त्व जगत् की आबादी बढ़ने लगी। 'औक्कम के रेजर' का प्रयोग करना आवश्यक मानकर रसल ने भाषा की विवेचना करते हुए यह बात स्पष्ट करने का प्रयास किया कि किस स्थिति में भाषा हमें मिथ्या तात्त्विक धारणाएं प्रदान करती है और इस दोष से कैसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

मैक्सवेल ने अपने लेख 'रसल का भाषा-दर्शन' में उनके भाषा-दर्शन की मुख्य उपलब्धियों का तीन शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकरण किया है: (१) प्रकार के सिद्धान्त के परिणामों को आम भाषा पर लागू करना, (२) संसार की मूल निर्माण सामग्री की खोज, (३) 'आदर्श भाषा' का प्रत्यय।

किसी विशेष संदर्भ में किसी प्रत्यय का प्रयोग किस प्रकार उचित है, यह निर्धारित करने के लिए उसके प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना रसल ने आवश्यक माना है। एक ही संदर्भ में प्रयोग किये जा सकने वाले प्रतीकों द्वारा निर्देशित पदार्थों को एक ही प्रकार का माना गया है। इस प्रकार विभिन्न पदार्थों को एक क्रमबद्धता में रखते हुए, उन्हें भिन्न-भिन्न सोपानों पर स्थापित करने से वे पृथक् हो जायेंगे और उनमें प्रकार का भेद स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकेगा।

इस विधि के प्रयोग द्वारा गणित तथा तर्कशास्त्र में उपस्थित अनेक विडम्बनाओं को निगमित करने वाली युक्तियों को अवैध सिद्ध करना सम्भव हो गया। परन्तु आरम्भ में इस विधि का प्रयोग इन्हीं दो क्षेत्रों तक सीमित रहा। भाषा में प्रकार की अस्पष्टता को दर्शाने के लिए

व्याकरणशास्त्र में विद्यमान नियमों के अनुसार स्थापित सिद्धान्त की आवश्यकता को रसल ने पहचाना और उसे प्रतिपादित किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार व्याकरण की दृष्टि से दोषरहित अनेक वाक्य ऐसे हैं जो वास्तव में अर्थहीन हैं। यदि दो शब्द व्याकरण की दृष्टि से एक प्रकार के होते हुए भी तार्किक रूप में भिन्न हों और एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग किया जाये तो अर्थहीन वाक्य उत्पन्न होंगे। अपने एक लेख में रसल ने स्पष्टत: स्वीकार किया है कि "प्रकार का सिद्धान्त वास्तव में वस्तुओं के विषय में नहीं, वरन् प्रतीकों के विषय में है।" परंतु प्रतीकों के प्रकारों को निर्धारित करने का तात्पर्य है शब्द तथा शब्द के नाम के भेद को मानना। यह प्रक्रिया लम्बी तथा जटिल है और स्वयं विरोधाभास से पूर्णत: मुक्त नहीं। इसका आधार व्याकरण नहीं, वरन् भाषा का बाह्य संदर्भ से मुक्त तार्किक आकार है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या आम भाषा को दोषपूर्ण अथवा भ्रामक मानना ठीक नहीं है? उसके प्रयोग से उत्पन्न कठिनाइयां किस संदर्भ में पाई जाती हैं? दार्शनिक विचारकों तथा विशेषकर तत्त्व-दर्शन के प्रतिपादकों की भाषा-सम्बन्धी भ्रामक धारणाओं को समस्याओं का मूलाधार मानना एक बात है और आम भाषा को ही दोषपूर्ण ठहराना दूसरी बात।

मैक्सवेल के अनुसार भाषा की विवेचना में रसल के प्रकार के सिद्धान्त की उपयोगिता को जानने के लिए इसकी नकारात्मक व्याख्या को समझना होगा। आम भाषा में यह बताना सहज कार्य नहीं कि अमुक प्रतीक किस स्थिति में किस प्रकार से प्रयोग किया जाता है या होना चाहिए। इसके विपरीत दो प्रकार के प्रतीकों के अन्तर को बताना शायद इतना कठिन नहीं। किस संदर्भ में दो प्रतीकों अथवा शब्दों को एक-दूसरे की जगह प्रयोग करने के परिणामस्वरूप अर्थहीन वाक्य बन जाते हैं, यह बात आम भाषा का प्रयोग करने वाले को सहज ही समझ में आती है। प्रकार के सिद्धान्त की यहां विशेष उपयोगिता नहीं है क्योंकि आम भाषा में प्रकारों के अन्तर को बिना किसी सिद्धांत का प्रयोग किए हुए ही कायम रखा जाता है।

इस बात को दूसरी तरह कहा जाये तो मानना होगा कि आम

आदमी भाषा का प्रयोग करते हुए किन्हीं तात्त्विक अवधारणाओं अथवा पूर्व मान्यताओं को लेकर नहीं चलता, न ही ऐसी मान्यताओं से उसे कोई मतलब है। प्रकार के सिद्धान्त द्वारा प्रतीकों में अन्तर बताना सम्भव है और इससे दार्शनिकों को लाभ हो सकता है, तत्त्व-मीमांसा के लिए शब्दों का प्रयोग आवश्यक होता है और इस संदर्भ मे यह जानना आवश्यक है कि कौन-सा शब्द किस-किस शब्द की जगह लगाया जा सकता है और कौन-सा नहीं।

जहां तक संसार की मूल निर्माण सामग्री का प्रश्न है, रसल ने विवरण सिद्धांत (थ्योरी आफ डिस्क्रिप्शन) द्वारा इस प्रश्न को समझने का प्रयत्न किया। मूल पदार्थों की संख्या बढ़ाने में भाषा के भ्रमित प्रयोग का जो योगदान रहा है, उसे पहचानकर भविष्य में इस सम्भावना को दूर करना सम्भव है। अपने विवेचन से रसल ने यह दर्शाने का प्रयास किया कि कुछ विवरण ऐसे हैं जो किसी वस्तु या व्यक्ति को निर्देशित नहीं करते; जैसे 'वह (व्यक्ति) जो आजकल फ्रांस का राजा है।' आज के संदर्भ में किसी व्यक्ति को निर्देशित नहीं करता क्योंकि आजकल फ्रांस में कोई राजा नहीं है। अब यदि हम कहें 'वह (व्यक्ति) जो आजकल फ्रांस का राजा है, विवाहित है।' तो इस वाक्य को किस प्रकार समझा जाये? रसल के अनुसार यह वाक्य कहता है कि 'केवल एक चीज़ है जो फ्रांस पर राज्य करती है और ऐसा नहीं है कि जो चीज फ्रांस पर राज्य करती है, वह विवाहित नहीं है।' इस व्याख्या का यह उद्देश्य है कि 'वह (व्यक्ति) जो आजकल फ्रांस का राजा है।' इस विवरण के निर्देश से किसी विशेष वस्तु (या व्यक्ति) को मानना आवश्यक नहीं रह जाता।

आमतौर पर ऐसे विवरण को हम किसी वस्तु के नाम की तरह किसी वाक्य में प्रयोग कर सकते हैं। 'संसार की सबसे ऊंची इमारत', एक और, केवल एक ही वस्तु का विवरण है अतः उस वस्तु के नाम की जगह इसका प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा उचित है। परन्तु इसका तार्किक स्वरूप नाम से भिन्न है। यह एक विवरण है, नाम नहीं; और यह आवश्यक नहीं कि इस विवरण की तरह अन्य विवरण भी किसी वस्तु को निर्देशित करें।

तार्किक प्रतीकों के अतिरिक्त साधारण वस्तुवाचक शब्दों को लेकर भी कुछ समस्याएं हो सकती हैं। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए रसल ने तार्किक निर्माण के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और ज्ञान मीमांसा में भाषा के प्रयोग के महत्त्व को स्पष्ट किया। यदि हमसे पूछा कि 'कुर्सी' किस वस्तु का नाम है तो हम इन्द्रिय अनुभव द्वारा प्राप्त जाय कुछेक गुणों के अतिरिक्त किसी वस्तु को नहीं इंगित कर सकेंगे। रसल के अनुसार जिन गुणों का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उनके अतिरिक्त कुर्सी केवल एक तार्किक निर्मिति मात्र है। अर्थात् ऐसा प्रत्येक वाक्य जिनमें 'कुर्सी' शब्द का प्रयोग हुआ है, एक ऐसे वाक्य में रूपान्तरित किया जा सकता है जिसमें इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया हो।

किसी वाक्य के अन्तिम रूपान्तरीकरण में केवल तार्किक रूप से विशेष नाम होते हैं जो संसार की मूल सामग्री में से कुछ के नाम हैं। यह मूल सामग्री वे वस्तुएं हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इन्हें इन्द्रिय ज्ञान की सामग्री के रूप में जाना गया है। इस प्रकार अनुभववादी विचार-धारा के प्रभाव के कारण रसल ने आम भाषा की विवेचना के क्षेत्र में भी एक प्रकार की घटोतरी के सिद्धान्त को अपनाया। इस सिद्धान्त के अनु-सार भौतिक पदार्थ, आत्मन्, मनस् आदि प्रतीकात्मक कल्पनाएं अथवा मिथक हैं।

आम भाषा की समस्त दार्शनिक कमियों को (जिनको उनके आलोचक नहीं मानते) दूर करने के उद्देश्य से रसल ने एक 'आदर्श भाषा' के निर्माण की सम्भावना पर विचार किया। 'आदर्श भाषा' में प्रत्येक सहज वस्तु के लिए केवल एक शब्द होगा और जो सहज (अर्थात् प्रत्यक्ष का विषय) नहीं है, उसे एक शब्द-समूह द्वारा व्यक्त किया जायेगा। इस प्रकार की भाषा में शब्दों का अर्थ केवल प्रयोग करने वाले व्यक्ति को ही समझ आ सकता है क्योंकि शब्द केवल उसके प्रत्यक्ष की सामग्री का ही नाम हो सकता है। भाषा का एक बहुत बड़ा उद्देश्य है विचारों, भावनाओं आदि का आदान-प्रदान, परन्तु दो व्यक्तियों के अनुभवों का सामान्य आधार रसल की 'आदर्श भाषा' में प्राप्त नहीं हो सकता।

एक ओर वे भाषा को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं और इसके

लिए उसमें अमूर्त प्रतीकात्मकता को बढ़ाना चाहते हैं जिससे भाषा से व्यक्तिगत संदर्भ को दूर करके उसे सार्वभौम प्रत्ययों को अभिव्यक्त करने योग्य बनाया जा सके, दूसरी ओर शब्दों को नितान्त व्यक्तिगत प्रत्ययों के नाम के रूप में प्रयोग करने की सम्भावना को मानकर रसल उसे पूर्णतः भिन्न रूप में समझते जान पड़ते हैं। इन विरोधी प्रवृत्तियों का कारण यह है कि एक ओर वे गणित तथा तर्कशास्त्र (जो सार्वभौम प्रत्ययों तथा धारणाओं पर आधारित हैं) के आदर्श को अपनाए हुए हैं और दूसरी ओर ह्यूम के अनुभववाद के कायल हैं। उनके दार्शनिक विकास के विभिन्न समयों पर इन विचारधाराओं का प्रभाव कम या अधिक रहा। परन्तु रसल का उद्देश्य सदा यही रहा कि भाषा सत्य की खोज में सहायक हो और शब्द अनुभव की वस्तुओं के नाम हों।

रसल की 'आदर्श भाषा' न तो व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव है न ही आवश्यक। हां, उनके प्रयास से दार्शनिकों को एक व्यावहारिक लाभ हो सकता है और हुआ भी है। वह यह कि ज्ञान के क्षेत्र में भाषा के प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता को समझा गया। दार्शनिक अस्पष्टता अथवा विचारों में भाषा को ठीक से न समझने के कारण होने वाली भूलों के सुधार के लिए शब्दों-वाक्यों का विश्लेषण अथवा रूपान्तरण किया जा सकता है।। प्रश्न यह उठता है कि यह कार्य किस प्रकार किया जाए ? रसल के प्रकार-सिद्धान्त अथवा तार्किक निर्माण की तकनीकी विधि को अपनाने से इस प्रश्न का उत्तर पाने में सहायता मिल सकती है।

रसल को एक विश्वास यह रहा है कि भाषा के आकार का तथ्यों के आकार से कुछ ऐसा सम्बन्ध है जो किसी एक भाषा तक सीमित नहीं रहता। यदि ऐसा है तो भाषा की वैयक्तिकता तथ्यों की वस्तुपरकता से सन्तुलित हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जटिल प्रत्यय की व्याख्या उसके नाम को प्रयोग किये बिना उसके विभिन्न अंशों तथा उन अंशों के बारे में बात करते हुए की जा सकती है।

रसल भाषा के दार्शनिक विश्लेषण के द्वारा दर्शन के तकनीकी पहलू को वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर पर लाना चाहते हैं। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे आम भाषा के स्वरूप को समझना काफी नहीं मानते;

उसमें आवश्यक परिवर्तन लाना अथवा एक ऐसी भाषा का विकास भी आवश्यक मानते हैं जो आम भाषा की तात्त्विक अस्पष्टता तथा आकारिक अनिर्धारणता से मुक्त हो।

रसल की विश्लेषण-विधि का पाश्चात्य दर्शन के विकास में महत्त्व-पूर्ण योगदान रहा है। उनके तथा मूर के प्रयासों का प्रभाव आम भाषा को समुचित तथा सही मानने वाले विचारकों पर उतना ही अधिक पड़ा जितना तार्किक अनुभववादियों पर।

विज्ञान-दर्शन

विज्ञान के प्रति रुचि तथा प्रगाढ़ निष्ठा रसल के बौद्धिक जीवन का अभिन्न अंग है। विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र के विषय में ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए अत्यन्त रोचक तथा पूर्णतः स्वाभाविक रहा है।

'ह्यूमन नालेज' के प्रथम भाग में रसल ने आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में हुई महत्त्वपूर्ण खोजों की मूल व्याख्या को स्पष्ट करते हुए, उनके अनुसार स्थापित धारणाओं को समझने का प्रयास किया है। आम व्यक्ति भौतिक विज्ञान, जीवविज्ञान तथा मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में स्थापित नये सिद्धान्तों को समझने तथा उनके सार को आत्मसात् करने में कठिनाई का अनुभव करता है। रसल ने इस कठिनाई को कम करते हुए विज्ञान की उपलब्धियों के सैद्धान्तिक स्वरूप की विवेचना की है। इसके साथ ही उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि आधुनिक विज्ञान की प्रमुख चुनौतियों को स्वीकार कर लेने पर हमें अपनी धार्मिक, नैतिक तथा तत्त्व-ज्ञान-सम्बन्धी धारणाओं की नये ढंग से जांच करनी होगी।

रसल के विज्ञान-सम्बन्धी चिन्तन के दो पहलू हैं। एक, जिसका संबंध विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली सैद्धांतिक उपलब्धियों के विवरण से है। दूसरा, जिसका विज्ञान में होने वाले परिवर्तनों तथा नये सिद्धान्तों के दार्शनिक परिणामों में है।

भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में आइन्स्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त तथा क्वाण्टम भौतिकी इन दोनों का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा है कि दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में देश-काल तथा भौतिक पदार्थ की तात्त्विक व्याख्याएं पूर्णतः परिवर्तित हो गई हैं। रसल ने न्यूटन तथा आइन्स्टाइन के सिद्धांतों

में निहित मूल अन्तर को स्पष्ट करते हुए भौतिक विज्ञान में देशकाल, गति, अणु तथा ऊर्जा आदि के प्रत्ययों की नई व्याख्या के परिणामों को समझने का प्रयास किया है।

'ह्यूमन नालेज' के प्रथम भाग में रसल 'क्वाण्टम भौतिकी' तथा 'रिलेटीविटी' दोनों सिद्धांतों द्वारा स्थूल पदार्थ (मास) के प्रत्यय के स्थान पर ऊर्जा (एनर्जी) के प्रत्यय को स्थापित करते के परिणामों को बताते हुए कहते हैं कि पहले (न्यूटन के सिद्धांतानुसार) स्थूल पदार्थ को ही भौतिक वस्तुओं का द्रव्य तथा तात्त्विक आधार माना जाता था। परंतु नए भौतिक शास्त्र के अनुसार स्थूल पदार्थ का अपना कोई स्थायी रूप नहीं होता। इसके पक्ष में उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि नए भौतिक सिद्धांत के अनुसार यदि कोई कण प्रकाश की गति से चलने लगे तो उसकी स्थूलता अंतहीन हो जायेगी। इस उदाहरण में स्थूल पदार्थ के प्रत्यय से अधिक महत्त्व गति के प्रत्यय का है।

क्वाण्टम भौतिकी की स्थापना के फलस्वरूप हाइसनबर्ग का अनिश्चि-तता सिद्धान्त स्थापित हुआ। इसके अनुसार किसी दिये हुए समय में किसी कण की भौतिक स्थिति अथवा गति को निर्धारित करने में एक अनिश्चितता रहेगी। यदि उसकी स्थिति सही बताई जाये तो गति ठीक नहीं बता सकते और यदि गति का माप सही बतायें तो उसकी स्थिति ठीक नहीं बता सकेंगे। इस प्रकार ऊर्जा तथा समय को उचित तथा एकदम सही तरीके से मापने का कोई उपाय नहीं।

गणितशास्त्र (जिसे विशुद्ध विज्ञान की संज्ञा दी गई है) के क्षेत्र में स्थापित रसल के सिद्धांतों का उनके विज्ञान-सम्बन्धी चिंतन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। गणित के क्षेत्र में जिस प्रकार संख्या को उन्होंने एक तार्किक निर्मिति (लाजिकल कंस्ट्रक्शन) माना, उसी प्रकार भौतिक पदार्थ को भी तार्किक कल्पना के रूप में लिया। रसल भौतिकी की इस विशेषता से बहुत प्रभावित हुए कि उसके अधिकांश सिद्धांतों का स्वरूप अमूर्त होता है। उनको एक प्रश्न का उत्तर बार-बार कई संदर्भों में ढूंढ़ना पड़ा। संसार के नित्यप्रति के जीवन द्वारा अभिव्यक्त गुणों तथा सैद्धांतिक भौतिकी के विवरणानुसार निर्धारित स्वरूप के अंतर को मानते हुए दोनों

को सत्य किस प्रकार माना जाए ?

भौतिक विज्ञान की अमूर्त तथा दूरस्थ सत्ताओं को ही नहीं, वरन् नित्यप्रति के जीवन की मूर्त वस्तुओं को भी उन्होंने तार्किक निर्मिति माना और उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर दिया। इस निष्कर्ष तक रसल किस प्रकार पहुंचे ?

संशययुक्त ज्ञान-सामग्री की खोज करते हुए वे ऐसी मूल धारणाओं को पा लेना चाहते हैं जो तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से सभी अन्य धारणाओं की पूर्ववर्ती हैं। तार्किक सत्यों तथा इन्द्रियानुभूति के विशेष तथ्यों को, ठोस, सुनिश्चित तथा मूलभूत मानकर चलने के कारण रसल को यह स्वीकार करना पड़ा कि भौतिकी के नियमों का आधार भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही होता है। परंतु उन्होंने पाया कि भौतिक शास्त्र हमें यह नहीं बताता कि हमें कब किस प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भौतिक शास्त्र में भौतिक पदार्थों व वस्तुओं तथा मनुष्य की प्रत्यक्षानुभूतियों के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस कार्य को विज्ञान नहीं, वरन् विज्ञान-दर्शन ही कर सकता है।

अपनी पुस्तकों 'द प्राब्लम्स आफ फिलासफी' (१९१२), 'द एनालिसिस आफ मैटर' (१९२७) तथा 'आवर नालेज आफ द एक्स्टर्नल वर्ल्ड' (१९२९) आदि में रसल ने भौतिक वस्तुओं के प्रत्यक्ष ज्ञान में अनुभव द्वारा प्राप्त सामग्री तथा बाह्य जगत् में स्थित वस्तु के अस्तित्व—इन दोनों के सम्बन्ध के प्रश्न उठाये हैं। रसल के अनुसार प्रत्यक्ष की सामग्री अनुमान से परे होती है जबकि नित्यप्रति के जीवन की वस्तुएं जैसे कुर्सी, मेज, किताब, बर्तन आदि अनुमानित (तार्किक दृष्टि से)। इन दोनों के सम्बन्ध को तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर समझने के प्रयास में वे नित्यप्रति के जीवन की वस्तुओं तथा वैज्ञानिक वस्तुओं—दोनों को ही तार्किक निर्मिति मानने के लिए मजबूर हुए।

एक अर्थ में वे सभी वस्तुएं जो जटिल हैं, तार्किक निर्मिति कही जा सकती हैं। इसका एक कारण रसल यह मानते हैं कि मूलभूल पदार्थ सरल अर्थात् जटिलताशून्य होते हैं तथा संसार के निर्माण की मूल सामग्री उन्हीं से बनी हुई है। इन सरल विशेषों का कोई आंतरिक ढांचा

नहीं होता। इसका विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता (क्योंकि विश्लेषण केवल जटिल वस्तुओं का हो सकता है)। रसल के अनुसार जो जटिल है, वह सरल से बनता है। भौतिक ज्यामिति, गणितीय गतिशास्त्र आदि के क्षेत्र में बिन्दु के प्रत्यय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें से अनेक वैज्ञानिक क्षेत्रों में भौतिक घटनाओं की व्याख्या तथा पूर्व सूचना देने की क्षमता पाई गई है। परंतु बिंदु को विशेष प्रकार की सत्ता नहीं माना जा सकता। उन्होंने बिंदु को तकनीकी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रत्यय माना। उन्होंने उसे विशेष प्रकार को सह-घटित होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध अथवा ढांचे के रूप में परिभाषित किया है।

अमरीकी तर्कशास्त्री अरनेस्ट नेगल ने रसल के विज्ञान-दर्शन की आलोचना करते हुए यह माना कि वे प्रत्यक्ष ज्ञान को हमारे समस्त ज्ञान के मूलाधार के रूप में लेते हुए यह भूल जाते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान में भी विकल्प होता है। इसके अतिरिक्त एक कार्य-कारण प्रक्रिया की अंतिम कड़ी के रूप में प्रत्यक्ष एक विषयपरक घटना है जिसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए यह मानना पड़ता है कि इसके कारण का हमें कभी साक्षात्कार नहीं हो सकता; जबकि आम जीवन में हम प्रत्यक्ष को बाह्य संसार की वस्तुओं के ज्ञान का मूल स्रोत मानते हैं न कि एक मनोवैज्ञानिक अनुभूति मात्र। इस समस्या का क्या समाधान है ?

भौतिक विज्ञान के अमूर्त्त फारमूलों तथा साधारण भौतिक वस्तुओं का क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न पर शायद रसल विशेष प्रकाश नहीं डाल सके। उनके विज्ञान-दर्शन की प्रमुख देन यह मान्यता है कि भौतिक विज्ञान के अनेक तर्कवाक्य तथ्यात्मक नही हैं, क्योंकि वे वास्तव में परिभाषाएं हैं। परंतु कौन-से तर्कवाक्य को परिभाषा के रूप में लिया जाये, इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। रसल ने कुछ ऐसे प्रत्ययों की व्याख्या की है, जो आधुनिक भौतिक विज्ञान में परिभाषित हैं। इन सब प्रयासों द्वारा वे सैद्धांतिक ज्ञान तथा वास्तविक ज्ञान के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यद्यपि हमारा बहुत-सा ज्ञान सैद्धांतिक है परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वह अवैध ज्ञान है।

विज्ञान-दर्शन के क्षेत्र में रसल का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण है,

इसे नेगल ने इस प्रकार व्यक्त किया है "गणितिक विज्ञानों को समुचित रूप से समझने की दिशा में रसल के विश्लेषण ने जो महान् सेवा की है, उसे उनका कोई भी विद्यार्थी मान्यता देना नहीं भूल सकता। उन्होंने भौतिक सिद्धांतों की अत्यधिक चुनावपूर्ण विशेषताओं और साथ ही इनके प्रयोग में उपयोग की गई इन्द्रियजन्य सामग्री के जटिल रूपांतरण तथा पुनस्संगठन को सहज बनाया। उन्होंने अनेक प्रतीकात्मक निर्मितियों के अर्ध-आकस्मिक स्वरूप तथा अनेक भौतिक तर्कवाक्यों के परिभाषात्मक स्वरूप को प्रदर्शित किया···"

'द एनालिसिस आफ मैटर' में रसल ने भौतिक शास्त्र के विकास की तार्किक विवेचना, भौतिक शास्त्र तथा प्रत्यक्ष के सम्बन्ध तथा भौतिक संसार के आकार इन तीन विषयों को सविस्तार लिया। आधुनिक भौतिक शास्त्र के मूल सिद्धांतों के अनुसार भौतिक पदार्थ, देश-काल, कारणता आदि के प्रत्ययों को किस रूप में लेना चाहिए, यह स्पष्ट करते हुए एक नये विज्ञान-दर्शन की भूमिका बनाई।

हमारे ज्ञान में प्रत्यक्ष से भी अधिक अनुमान का महत्त्व है। विज्ञान के स्वरूप को जानने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। रसल ने अनेक स्तरों पर किये जाने वाले अनुमानों को एक कड़ी के रूप में देखा। पहले मात्र दैहिक अनुमान है जो पूर्णतः व्यक्त नहीं होता परंतु वह सभी में पाया जाता है। उसके बाद एक धारणा से दूसरी धारणा तक जाने की प्रक्रिया है जो स्वतः हो जाती है और तर्क-वितर्क के अधीन नहीं होती। तत्पश्चात् किसी धारणा पर आधारित अनुमान होता है (यह धारणा पूर्णतः विचार-हीन हो सकती है अथवा अनुमान का तर्क दोषपूर्ण हो सकता है)। अन्त में आता है वैध अनुमान जो किसी सत्य सिद्धांत पर आधारित होता है। यद्यपि अनुमान ऐतिहासिक रूप में इसी क्रम से उत्पन्न होते हैं, परंतु एक के उत्पन्न होने पर पहले वाला लुप्त नहीं हो जाता।

रसल के अनुसार विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है हमारे इन विश्वासों की पुष्टि करना जो पहले से हमारे विचारों के अंग हैं। आम जीवन की धारणाओं तथा अनुमानों से जिस क्षेत्र में विज्ञान कुछ ग्रहण करता है वह है उन पदार्थों का अनुमान जो प्रत्यक्ष से परे है। आम

जीवन में हम यह अनुमान करते हैं कि जिन वस्तुओं का प्रत्यक्ष हमें होता है, वे वस्तुएं तब भी विद्यमान रहती हैं जब उनका प्रत्यक्ष नहीं किया जा रहा है। इसी प्रकार आम लोग मानते हैं कि दूसरे व्यक्तियों में मनस् तथा चेतना है। दूसरों के दर्द को हम प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं करते परंतु अनुमानित करते हैं। यह अनुमान पूर्णतः दैहिक होता है।

आम जीवन के विश्वासों से हम धीरे-धीरे क्रमशः विज्ञान के निकट से निकटतर पहुंचते जाते हैं। रसल यह मानते हैं कि निरीक्षण, प्राक्कल्पना, प्रयोग तथा सिद्धांत, इन स्तरों से गुजरते हुए विज्ञान अपने लक्ष्य तक पहुंचता है। वैज्ञानिक सिद्धांतों को लागू करते हुए हमें आम आदमी की सूझ-बूझ का उपयोग करने की आवश्यकता पड़ती रहती है। इस प्रकार विज्ञान तथा साधारण जीवन की विचार-पद्धति में अन्तर होते हुए भी दोनों की आत्मनिर्भरता बनी रहती है।

परंतु संसार के वास्तविक स्वरूप अथवा हमारे ज्ञान की तात्कालिक वस्तुस्थिति के विषय में आम व्यक्ति के विचारों तथा वैज्ञानिक धारणाओं में काफी अंतर होता है। प्रत्यक्ष के कारणवादी सिद्धांत को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वीकारते हुए रसल यह पाते हैं कि जिस सूर्य का हम दिन-प्रतिदिन साक्षात्कार करते हैं, वास्तव में उसका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं अनुमानित है। हमारा 'सूर्य को देखना' एक प्रक्रिया का नाम है जो सूर्य से आरम्भ होती है तथा सूर्य और हमारी आंखों से ही नहीं, हमारी चक्षु-नाड़ियों, मस्तिष्क आदि से भी जुड़ी हुई है। हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान उस वस्तु के विषय में है जो एक अर्थ में 'हमारे अन्दर' है, अर्थात् प्रत्यक्ष की हमारे अन्दर होने वाली प्रक्रिया की अन्तिम कड़ी है। आम व्यक्ति यह मानता है कि हमारे प्रत्यक्ष का कारण तथा हमारे प्रत्यक्ष की तात्कालिक विषय-वस्तु दोनों एक ही हैं। इस अर्थ में हमारे प्रत्यक्ष का कारण तथा विषय एक हो जाता है, तथा उसे हम अपने से बाहर एक वस्तुपरक देश-काल में स्थित मानते हैं।

रसल के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान में वैयक्तिकता (सब्जेक्टिविटी) भौतिक, दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक इन तीन तत्त्वों के कारण होती है। भौतिक वैयक्तिकता के लिए चेतनशीलता आवश्यक नहीं। कैमरा अथवा

रिकार्ड करने वाले क्षेत्र में भी यह वैयक्तिकता होती है। रिलेटीविटी सिद्धांत ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भौतिक वैयक्तिकता सापेक्ष गतिशीलता पर निर्भर होती है, जबकि दैहिक वयक्तिकता इन्द्रियों में दोष के कारण उत्पन्न होती है, अथवा नशीले पदार्थों के सेवन के कारण। यहां वैयक्तिकता मिथ्या अनुमान को जन्म देती है, किसी अनुमान तक न पहुंचने की मजबूरी को नहीं।

मनोवैज्ञानिक वैयक्तिकता पूर्वानुभूतियों के कारण उत्पन्न होती है। प्रत्येक प्रत्यक्ष में समीक्षात्मक तत्त्व रहते हैं जो हमारे अतीत के अनुभवों से उद्गमित होते हैं। रसल ही नहीं, आधुनिक मनोविज्ञान भी इस बात को मानता है तथा प्रयोगों द्वारा इसकी पुष्टि करता रहा है कि प्रत्यक्ष ज्ञान में वितर्क, पूर्वानुभूति, मानसिक झुकाव आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इन सब परिस्थितियों को देखते हुए तथा यह मानते हुए कि बाह्य संसार में घटित घटना और हमारे प्रत्यक्ष के बीच कई कड़ियों वाली कार्यकारण प्रक्रिया होती है, यह किस प्रकार माना जाये कि जिस वस्तु का हमें प्रत्यक्ष होता है वस्तु के तथा जिस कारण प्रत्यक्ष होता है, वह दोनों एक ही हैं ? वास्तव में क्या हम अपने प्रत्यक्ष के आधार पर उसके कारण को मानते हैं ? भौतिक पदार्थ (मैंटर) को आधुनिक भौतिक शास्त्र ने एक प्रकार की घटनाओं का संग्रह माना है और भौतिक पदार्थ बाह्य वस्तुओं का आधार माना गया है। परंतु घटनाओं के संग्रह के रूप में यह केवल एक तार्किक निर्मिति है।

प्रश्न उठता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान का वियय एक ओर अनुमानित कारण और दूसरी ओर तार्किक निर्मिति कैसे है ? यदि हमें कुर्सी का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है तो हमारे प्रत्यक्ष के कारण के रूप में कुर्सी अनुमानित वस्तु है। तार्किक दृष्टि से उसी बात को हम यों कहेंगे कि हमारे प्रत्यक्ष में निहित विभिन्न अंशों को एक सूत्र में बांधने वाला एक सुविधाजनक शब्द है 'कुर्सी'। अर्थात् कुर्सी शब्द किसी एक वस्तु का नाम नहीं, वरन् प्रत्यक्ष के विषय को लम्बे-चौड़े विवरण द्वारा न बताकर संक्षिप्त प्रतीक द्वारा बताने का तरीका है। रसल भौतिक वस्तु को संवेदनात्मक गुणों तथा

अनुभूतियों के प्रत्ययों द्वारा परिभाषित करते हैं। यहां उनका उद्देश्य है ज्ञानके उद्‌गम को तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से समझना।

रसल सहज यथार्थवाद के विरुद्ध तर्क देते हुए ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में द्वैतवाद को अपनाते हैं। वे प्रत्यक्ष के कारणवादी सिद्धांत के आधार पर प्रत्यक्ष के तात्कालिक विषय तथा उसके कारण (अर्थात् भौतिक वस्तु जो अनुमानित है) के द्वैत को मानते हुए एक तरह से बाह्य भौतिक वस्तु के अस्तित्व को मानने के लिये बाध्य हैं। इस प्रकार भौतिक वस्तुएं हमारे प्रत्यक्ष के कारणों के रूप में स्थापित हो जाती हैं। वे अनुमानित हैं, परंतु असत् नहीं। परंतु भौतिक वस्तुओं को तार्किक निर्मित कहने का एक कारण है अनुभववाद के तर्क को अपनाना।

जहां तक वास्तविक ज्ञान का सम्बन्ध है हम अपने प्रत्यक्ष के तात्कालिक विषय को तो जानते हैं परंतु उसके कारण के अस्तित्व का केवल अनुमान लगा सकते हैं। अतः अनुभववादी युक्ति के अनुसार हम यही कह सकते हैं कि भौतिक वस्तु की बात करने का अर्थ है कुछ विशिष्ट इन्द्रियानुभूतियों की सम्भावना को इंगित करना। परंतु आम व्यक्ति तथा सहज यथार्थवादी मानता है कि वह भौतिक वस्तु (जैसे कुर्सी) का सचमुच प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है और यह मानते हुए भी कि वास्तविक भौतिक वस्तु एक अर्थ में हमारे प्रत्यक्ष का कारण है; यह कहना आवश्यक नहीं समझता कि भौतिक वस्तु एक तार्किक निर्मिति अथवा अनुमानित वस्तु है। आधुनिक भौतिक विज्ञान ने भौतिक पदार्थ (मैटर) को एक प्रकार की घटनाओं का संग्रह माना है। इस प्रकार भौतिक पदार्थ एक सुविधाजनक प्रत्यय है जिसे हम एक तार्किक निर्मिति कह सकते हैं तथा जो किसी एक पदार्थ का नाम न होकर अनेक घटना समूहों का सामूहिक नाम है।

भौतिक वस्तु को घटनाओं के वर्गों का वर्ग मानते हुए रसल भौतिक पदार्थ के सम्बन्ध में दिये गये वाक्यों का स्थान उन वाक्यों को देना चाहते हैं जो कुछ विशेषताओं की विशेषता के सम्बन्ध में होते हैं।

भौतिक द्रव्य की समस्या की ही तरह एक समस्या है मनस् तथा आत्मन् की। रसल ने 'प्राब्लम्स' (१९१२) में यह माना कि एक अर्थ में हम अपने प्रत्यक्ष के विषय में दो बातें कह सकते हैं। एक, यह कि हमें

अमुक वस्तु का प्रत्यक्ष हो रहा है। दूसरा, यह कि हमें अमुक प्रत्यक्ष का ज्ञान हो रहा है। सूर्य को देखने के साथ-साथ 'अपने सूर्य को देखने' को भी हम प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं।

सन् १९२१ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'एनालिसिस आफ माइण्ड' में रसल दूसरी प्रकार, अर्थात् हमें अमुक प्रत्यक्ष हो रहा है, इस ज्ञान के विषय को स्वीकार नहीं करते। अर्थात् हमें सूर्य का प्रत्यक्ष हो रहा है, इसका अर्थ है कोई वस्तु है जिसका हमें ज्ञान हो रहा है; परंतु 'हमारे सूर्य को देखने' को एक और ज्ञान की विषय-वस्तु नहीं माना जा सकता। ज्ञान की प्रक्रिया, विषय तथा वस्तु की जिस योजना को ब्रेण्टानो तथा माईनोंग ने प्रस्तुत किया था, उसकी परीक्षा करते हुए 'एनालिसिस आफ माइण्ड' के प्रारम्भ में रसल अमेरिकन तथा ब्रिटिश दो प्रकार के यथार्थवादियों के विचारों के अन्तर को बताते हुए कहते हैं कि अमेरिकन यथार्थवादी 'क्रिया' तथा विषय दोनों को ही दबा देते हैं, और मूर तथा एक समय तक स्वयं वह ('प्राब्लम्स आफ फिलासफी' में) विषय को दबाकर केवल क्रिया को मानते रहे हैं। मूर ने बर्कले के आदर्शवाद का खण्डन इसी यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए किया था। सन् १९२१ तक रसल इस दृष्टिकोण को त्याग चुके थे। वे कहते हैं कि माईनोंग द्वारा जिस क्रिया (ज्ञान की मानसिक क्रिया) का विवरण दिया गया है, वह मात्र एक प्रेत है जो एक समय तक आत्मा के रूप में माना जाता था।

रसल व्याकरण में 'आई' अर्थात् 'मैं' शब्द को किसी ऐसे वास्तविक पदार्थ का द्योतक नहीं मानते जो क्रियाओं तथा अनुभवों से परे एक सत्ता है। अपनी और भी बाद की रचना 'ऐन इन्क्वायरी इन्टू मीनिंग एण्ड ट्रुथ' में उन्होंने कहा है कि व्यक्ति-केन्द्रित विशेषों (इगोसेण्ट्रिक पर्टिकुलर्स) का भी व्यक्तिनिरपेक्ष विवरण दिया जा सकता है। 'यह', 'वह', 'यहां', 'इधर' आदि का व्यक्ति-निरपेक्ष विवरण किस प्रकार दिया जा सकता है, यह स्पष्ट नहीं है। इस तरह रसल के अनुसार मनस्-पदार्थ कुछ नहीं होता और चेतना कोई पदार्थ भी नहीं, वरन् एक व्यापार प्रक्रिया है।

इस प्रकार रसल भौतिक तथा मनस् दोनों प्रकार के पदार्थों की तात्त्विकता को नकार देते हैं। आधुनिक भौतिक शास्त्र पदार्थ से अधिक महत्त्व ऊर्जा के प्रत्यय को देता है और आधुनिक मनोवैज्ञानिक मनस् अथवा चेतना के स्थान पर व्यवहार को ही अपने अध्ययन का वास्तविक विषय मानते हैं। इस दृष्टि से रसल विज्ञान के आधुनिक प्रभावों के ही दार्शनिक स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए जान पड़ते हैं।

उपसंहार

अपनी पुस्तक 'द प्राब्लम्स आफ फिलासफी' के प्रथम अध्याय की प्रथम पंक्ति में रसल ने एक प्रश्न उठाया है, "क्या संसार में कोई ज्ञान है जिस पर कोई भी विवेकशील मनुष्य संशय नहीं कर सकता ?" इसी प्रश्न के उत्तर की खोज को उन्होंने दर्शनशास्त्र के अन्य कार्यों में एक प्रमुख कार्य माना। वास्तव में वे इतना ही कहते हैं कि रूढ़िवादिता से मुक्त एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए कुछ मूलभूत प्रश्नों के उत्तर की खोज के प्रयास का ही नाम दर्शनशास्त्र है। प्रश्नों के उत्तर पा लेने से अधिक महत्त्वपूर्ण है उनकी समाधान खोजने की प्रक्रिया, उचित विचार पद्धति, तर्क तथा विवेकशीलता।

निश्चितता की खोज विभिन्न संदर्भों में रसल के दर्शन का अंग बनी रही। इसका क्षेत्र धर्म, गणित तथा दर्शन तक सीमित नहीं, विज्ञान तथा नित्य-प्रति के जीवन की भूमिका भी इसके लिए महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञान की परिभाषा, स्वरूप, अवस्थाएं, विषय-वस्तु, वैधता की कसौटी आदि के सम्बन्ध में वे आजीवन विचार करते रहे।

'प्राब्लम्स...' में रसल मानते थे कि हमारी मूल प्रवृत्तियों पर आधारित धारणाएं एक आत्मसंगत दृष्टिकोण की रचना में सहायक हो सकती हैं। इस प्रकार की धारणाओं को एक क्रमबद्धता में संयोजित करने की आवश्यकता है। ऐसा करते हुए हम अधिक महत्त्वपूर्ण धारणाओं को ऊपर, तथा कम से कम महत्त्वपूर्ण को सबसे नीचे रख पायेंगे। रसल ने आत्मसंगति तथा इन्द्रियजन्य अनुभवों को संयोजित करने की क्षमता को ही इन धारणाओं की क्रमबद्धता का आधार माना।

तत्त्वदर्शन तथा ज्ञान मीमांसा के मिले-जुले संदर्भ में प्रत्ययवाद तथा यथार्थवाद के अनेक झगड़े उठे। रसल का झुकाव यथार्थवाद की ओर रहा परंतु समय-समय पर उन्हें प्रत्ययवाद के कुछ तर्क पसन्द आये। वह मानते हैं कि इस सम्पूर्ण संसार को एक स्वप्न मात्र मानने में कोई तार्किक विरोधाभास नहीं है। बर्कले ने भौतिक पदार्थ के अस्तित्व को मानने के विरुद्ध जो तर्क दिये, रसल उनको भी काफी सम्मान देते हैं। परन्तु उन्हें यह भी मानना पड़ता है कि वस्तुओं के सहज अस्तित्व को मान लेने पर हम अनेक हास्यास्पद निष्कर्षों से बच सकते हैं। जान लॉक की भांति वे मानते हैं कि हमारा तात्कालिक ज्ञान इन्द्रिय-अनुभूति तक सीमित रहता है; फिर भी, यह मानना आवश्यक जान पड़ता है कि बाह्य जगत् में हमारे अनुभवों के कारण के रूप में वास्तविक वस्तुएं तथा स्थितियां होती हैं।

इसी प्रकार वे यह मानने को भी बाध्य हैं कि हमारी आत्म-चेतना हमें मानसिक जगत् की सत्यता का आभास देती है। वे मानते हैं कि अनुभव ही हमें भौतिक तथा मानसिक जगत् के अस्तित्व का ज्ञान देता है।

कुछ ऐसे सामान्य सिद्धांतों को जिन्हें अनुभव प्रेरित तो करता है परंतु सिद्ध नहीं कर सकता, रसल अनुभव पर आधारित नहीं मानते। 'दु:ख की अपेक्षा सुख तथा अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान अधिक वांछनीय है, यह बात अनुभव प्राप्त करने के साथ ही जानी जाती है परंतु सुख अथवा ज्ञान के अन्तर्निहित मूल्य को अनुभव द्वारा सिद्ध या स्थापित नहीं किया जा सकता। ज्ञान के कुछ विषय ऐसे हैं जो न तो व्यक्तिगत चेतना पर निर्भर करते हैं और न भौतिक जगत् में स्थित हैं। ऐसे ज्ञान को अन्त:प्रज्ञा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सामान्य के सम्बन्धों का ज्ञान इसी प्रकार का होता है। विशुद्ध गणित तथा तर्कशास्त्र भी हमें इसी प्रकार का ज्ञान देते हैं।

१९४० में प्रकाशित 'ऐन इन्क्वायरी इन्टू मीनिंग एण्ड ट्रूथ' की भूमिका में रसल ने लिखा, "हम सभी सहज यथार्थवाद अर्थात् यह सिद्धांत कि वस्तुएं वैसी हैं जैसी वे हमें दिखाई देती हैं, से आरम्भ करते हैं।" परंतु भौतिक शास्त्र हमें बताता है कि वस्तुएं वैसी ही नहीं हैं जैसी हमें दिखाई देती हैं। घास का हरापन, पत्थर की कठोरता, बर्फ का ठंडापन

हमारे अनुभव से ज्ञात हरापन, कठोरता तथा ठंडापन नहीं है। रसल कहते हैं कि सहज यथार्थवाद हमें भौतिक शास्त्र की ओर ले जाता है परंतु भौतिक शास्त्र हमें बताता है कि सहज यथार्थवाद असत्य है।

पाल आर्थर शिल्प द्वारा सम्पादित 'द फिलासफी आफ बर्ट्रेंड रसल' में प्रकाशित आइन्स्टाइन के एक लेख में उनका यह मत अभिव्यक्त हुआ कि रसल ने संभ्रांत भ्रम तथा सहज यथार्थवाद के भ्रम दोनों से मुक्ति पाने का प्रयास किया है। संभ्रांत भ्रम आइन्स्टाइन उसे मानते हैं जिसके कारण हम सूक्ष्म विवेचन शक्ति को असीम मान बैठते हैं। दूसरा भ्रम आभास तथा यथार्थ के भेद को न जानने से उत्पन्न होता है। रसल ने आभास तथा यथार्थ के अन्तर को सदा ध्यान में रखा तथा सूक्ष्म विवेचन-शक्ति की सीमाओं को भी स्वीकार किया।

आइन्स्टाइन ने रसल के चिंतन में पाये गये 'तत्त्व-दर्शन के भय' को उन पर पड़े ह्यूम के प्रभाव का दुष्परिणाम माना है। समसामयिक अनुभववादी पद्धति से जुड़ी दार्शनिकता की यह एक आम बीमारी है। इसी के कारण वस्तुओं को 'गुणों का समूह' मानकर जब उनकी वस्तु-गतता पर शंका की जाती है तो आम जीवन की भौतिक वस्तुएं भी सहज ज्ञान से परे हो जाती हैं। स्वयं रसल ने भी अनुभववाद की पराकाष्ठा पर पहुंचकर स्थापित किये गये संशयवाद को आत्मखण्डित सिद्धांत माना है।

अनुभववादी द्वैतवाद तथा विज्ञान व कार्य-कारण सिद्धांत पर आधारित यथार्थवाद को बहुत वर्षों तक मानने के बाद विटगिन्स्टाइन के प्रभाव में आने पर रसल ने तार्किक अणुवाद को अपनाया और फिर कुछ समय बाद विलियम जेम्स से प्रभावित होकर निरपेक्ष एकतत्त्ववाद के सिद्धात के पक्ष में तर्क दिये।

यह स्पष्ट है कि बीसवीं सदी के विचारकों के मानस पटल पर घटित अनेक विचार- घटनाओं को प्रतिबिम्बित करती हुई रसल की रचनाएं इस सदी का सतत निरीक्षण और उसकी समस्याओं का अनवरत विवेचन करती रही हैं।

□□

विश्व के महान् चिंतकों की अमर कृतियां और जीवन परिचय

कन्फ्यूशियस	डा० विनय	१४/-
खलील जिब्रान : पैगम्बर	डा० नीलिमा सिंह	१४/-
नीत्शे : जरथुष्ट्र ने कहा	मुद्राराक्षस	१४/-

संत भक्त-कवि-माला

तुलसीदास	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
अमीर खुसरो	,,	१४/-
सूरदास	,,	१४/-
मीरा	,,	१४/-
गुरु नानक	डा० महीप सिंह	१४/-
संत रैदास	योगेश गुप्त	१४/-

धर्म-दर्शन-संस्कृति

उपनिषदों की कथाएं	आचार्य बटुक	१२/-
श्रीमद्भगद्गीता	,,	१२/-
रामायण	महर्षि बाल्मीकि	१५/-
महाभारत	महर्षि वेदव्यास	१२/-
पंचतंत्र	आचार्य विष्णु शर्मा	१२/-

नीति शास्त्र

विदुर नीति	महात्मा विदुर	१४/-
श्रृंगार शतक	भर्तृहरि	१४/-
वैराग्य शतक	,,	१४/-

आत्म-विकास

सफलता के ८ साधन	स्वेट मार्डन	१२/-
तीस दिन में सफलता	ए० पी० परेरा	१२/-

सर्वोत्तम शब्दकोश

एक सबसे अलग हिन्दी शब्दकोश तो दूसरा अंग्रेजी-
हिन्दी शब्दों-अर्थों का अभूतपूर्व प्रामाणिक भण्डार
आपके रोजमर्रा के जीवन के लिए सरल व सुबोध सहपाठी

व्यावहारिक हिन्दी शब्दकोश	२२/-
स्टैण्डर्ड अंग्रेजी-हिन्दी डिक्शनरी	२४/-

बर्ट्रेंड रसल : युग द्रष्टा

● बीसवीं सदी के सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक थे **बर्ट्रेंड रसल** (Bertrand Russell) सन् 1872 में जन्मे रसल ने वर्तमान समय की नब्ज़ को टटोला, गहरा चिंतन-मनन किया, सभी जटिल समस्याओं पर उनकी प्रखर मेधा की पकड़ ने उन्हें महान् विचारक बनाया।

● नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीयता के व्यावहारिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त रसल ने जीवन और जगत के अन्य पहलुओं पर विचार व्यक्त किए।

● वह मानव जीवन में प्रेम और सौंदर्य के प्रबल पक्षधर थे। उनके अनुसार इसी से आनन्द की धारा बहती है और सम्पूर्ण मानव-जाति की रक्षा संभव है।

● मिथ्या आदर्श उन्हें कभी पसंद नहीं आए। सत्य और यथार्थ उनकी पूंजी थे। न वह स्वयं किसी भ्रम में रहे न उनके दर्शन में ही ऐसा कुछ था। वह तो मानव कल्याण के कुशल दार्शनिक थे।

● इस पुस्तक में **युग द्रष्टा** का जीवन परिचय और सरल-सुबोध भाषा में उनके दर्शन को प्रस्तुत किया गया है।

सरस्वती सीरीज़

15/-

हिन्द पॉकेट बुक्स

ISBN – 81 – 216 – 0125 – 8